UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180107

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/M21F Accession No. G.H. 1628

Author मार्लो, क्रिस्टोफर ।

Title फ़ॉस्ट । 1945

This book should be returned on or before the date last marked below.

फरार

(उच्चकोटि का मौलिक सामाजिक उपन्यास)

लेखक

पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग ।

प्रथम संस्करण २०००]   १९४५   [मूल्य २)

प्रकाशक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज प्रयाग ।

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग ।

फ़रार

(१)

कालेज के विशाल हाल में विद्यार्थियों की मीटिंग होकर ही रही। बड़ा हॉल बिजली की स्वच्छ रोशनी से जगमगा रहा था और विद्यार्थी अपनी-अपनी जगह पर ऊबे-हुए-से बैठे थे। सभापति के आसन पर विराजमान थे—कॉलेज के बंगाली प्रिंसिपल, जो अधिक मात्रा में भोजन कर लेने के कारण कुछ अलसाये-से थे। उनकी पतलून की पेटी उन्हें कष्ट पहुँचा रही थी। प्रोफेसर भी अन्यमनस्क भाव से चुपचाप बैठे थे। अपनी रंग-बिरंगी साड़ियों में, अजन्ता की रंगीन तस्वीरों की तरह, विद्यार्थिनियों का एक दिलचस्प झुंड भी था। यद्यपि मीटिंग एक मनहूस और भद्दे वातावरण में हो रही थी, फिर भी प्रिंसिपल साहेब, जो एक मूर्त्तिमान व्यंग-चित्र से दिखलाई पड़ रहे थे, विद्यार्थियों के लिए मनोरञ्जन का कारण थे। सभी बेमन से ऊँघते हुए मानो एक बला टाल रहे थे।

मीटिंग का कमरा कॉलेज के तीसरे मंजिल पर था और खुली खिड़कियों से गंगा के उस पार से उदय होने वाले चाँद की रुपहली चाँदनी सद्य:प्रस्फुटित रजनी-गन्धा के सुवास के साथ लिपटी हुई भीतर आ रही थी।

देश के एक हिस्से में दुर्भिक्ष, महामारी, और हाहाकार का जो ताण्डव महीनों से हो रहा था, उसी पर विचार करने के लिए दिन में चार-चार बार भरपेट ठूँसकर खानेवालों की यह मीटिंग थी।

प्रिंसिपल साहेब ने अपनी कसी हुई पेटी में दोनों अँगूठे डालकर उसे थोड़ा-सा ऊपर खिसकाया और कहा, "दस विद्यार्थियों ने अकाल-निवारण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। वे एक स्वर से अकाल को दैवी अभिशाप स्वीकार करते हैं। अब मैं मिस्टर विनोद से कहूँगा कि वे अपने विचार हमारे सामने उपस्थित करें।

अचानक प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान सबसे पिछली बेंच पर बैठनेवाले उस नवयुवक विद्यार्थी की ओर गया, जिसके निखरते हुए यौवन की दीप्ति उसके कठोर, गम्भीर और स्वस्थ चेहरे पर झलमला रही थी। यही वह विनोद था जो कॉलेज में अपनी एकान्त प्रियता, गम्भीरता, और मितभाषिता के कारण बहुतों के बीच में रहते हुए भी प्रायः अकेला ही रहता था। विनोद चुपचाप उठकर खड़ा हो गया और बोला—मैं ऐसी मीटिंगों को पसन्द नहीं करता। यदि कहीं भी अकाल या महामारी है तो रहने दीजिए। जो भूखों मर रहे हैं उन्हें मरने दीजिए। मैं विनाश के चीत्कार को बन्द करना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि संसार का पुनर्निर्माण हो और मानव के रूप में जितने कूड़े एकत्रित हो गए हैं, उन्हें महानाश की भीषण ज्वालाएँ जलाकर खाक कर दें। जब तक ऐसा नहीं होता, इस सड़ी-गली मानवता से संसार का पिंड नहीं छूटता।

इतना बोलकर ज्यों ही विनोद ने बैठने का उपक्रम किया, मीटिंग में मधुमक्खी के छत्ते की तरह एक दबी हुई भनभनाहट फैल गयी। ऊँघते हुए प्रोफेसर सजग हो गए और प्रिंसिपल साहेब भी चौंक उठे। एक हो-हल्ले के बाद मीटिंग दुखान्त नाटक की तरह समाप्त हो गयी।

कोलाहल करता हुआ विद्यार्थियों का समूह सीढ़ियों से

उतरने लगा—अपने-अपने कमरों में जाने के लिए। किसी ने कहा—विनोद निहिलिस्ट है, तो किसी ने मत व्यक्त किया—मूर्ख है। विद्यार्थिनियों का दल सेंट की सुगन्ध बिखेरता चला गया।

× × ×

चाँदनी से सराबोर हरा-भरा मैदान और उस मैदान के उस पार विनोद का होस्टल। अपने आप में डूबता-उतराता उस विस्तृत निर्जन मैदान को जब विनोद पार कर रहा था तो चाँद कॉलेज की ऊंची-ऊँची इमारतों से कुछ ऊपर उठ आया था। कार्तिक की स्वच्छ चाँदनी आकाश से दूध के फेन की तरह बरस रही थी। गंगा की लहरियों से टकराकर आने वाली ठंढी हवा विनोद के पसीने से तर ललाट को स्पर्श कर रही थी। अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ते हुए विनोद ने यह अनुभव किया कि उसके पीछे-पीछे छाया की तरह कोई मानव-मूर्त्ति चल रही है। अपनी उत्सुकता मिटाने के लिए जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसकी उत्सुकता घटने के बदले में और बढ़ गयी, क्योंकि नीरव भवितव्यिता की तरह पीछा करने वाली "पुष्पा" थी जो उसकी सहपाठिनी और कॉलेज की सभी लड़कियों से अधिक उससे घृणा करने वाली थी। विनोद जब फिर आगे बढ़ा तो पुष्पा धीरे से बोली—विनोद बाबू, क्या आपने सदा अकेले ही चलने का निश्चय कर लिया है। यदि आपकी यही रफ्तार रही तो शायद छाया भी आपका साथ छोड़ दे। विनोद रुका और बोला—पुष्पा देवी, छाया का साथ रहना और न रहना बराबर ही है। मैं उस मिथ्या के लिए रुक कर सत्य की उपलब्धि को टालना नहीं चाहता।

पुष्पा विनोद के निकट आ गयी और बोली—विनोद बाबू, मैं अकाल के सम्बन्ध में आपके विचारों को सुनकर सिहर

उठी। क्या मैं यह मान लूँ कि आपके इस सुन्दर शरीर के भीतर 'नीरो' की आत्मा है ? देश का वह हिस्सा जो अन्नपूर्णा का क्रीड़ा-स्थल कहा जाता था, आज महानाश का मरघट बन चुका है और आप यह सोच रहे हैं कि वह स्मशान अपना रूप-विस्तार करके सारे विश्व को हड़प जाय।

दीर्घ निःश्वास त्याग कर विनोद बोला—देवी, विधान के अट्टहास से पुरुष-जाति का सृजन हुआ है और विगलित करुणा की एक बूँद आँसू से स्त्री-जाति का। अट्टहास और आँसू का साथ असम्भव है। मैं अपने तरीके से सोचता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं सही रास्ते पर हूँ।

पुष्पा सिहर उठी और बोली—विनोद बाबू, मैं एक बात पूछूँ ?

विनोद ने कहा—यदि आप पूछना आवश्यक समझें।

अपनी बिखरी हुई बुद्धि-सम्पत्ति को सयत्न बटोरती हुई पुष्पा ने यह अनुभव किया कि वह जो बात पूछने जा रही है बहुत ही हलकी और लड़कपन-सी है। पुष्पा अपने मन की झोलों की तलाशी लेती हुई चुपचाप खड़ी रही और विनोद अपने मन की सारी उत्सुकता को कानों में केन्द्रित किए चुपचाप खड़ा रहा, मानों किसी दैवी चमत्कार से दोनों बोलना भूल गये हों।

नीरव आकाश, नीरव चन्द्र, निर्जन नीरव मैदान और उस पर बिखरी हुई नीरव चाँदनी, इस महानीरवता की गोद में अपनी-अपनी बात भूले हुए दो नीरव मानव एक दूसरे के सामने खड़े थे। विनोद सहसा चौंककर बोला—आप क्या कहना चाहती हैं ?

पुष्पा मन ही मन कुछ लज्जित-सी हुई और घबराई-सी

बोली—हाँ, यों ही कुछ पूछना चाहती थी। खैर, किसी दूसरे दिन पूछ लूँगी।

विनोद सहज गम्भीर स्वर में बोला—आपकी इच्छा।

विनोद की इस गम्भीरता ने पुष्पा के स्त्रीत्व पर प्रहार किया। यदि विनोद उत्सुकता प्रकट करता, सुनने का आग्रह करता, और अनुनय-विनय के द्वारा पुष्पा को अपने मन की बात प्रकट करने के लिए सरस रीति से बाध्य करता तो इसमें नारीत्व की छिपी हुई जीत का गर्व कहा जा सकता है—जिस गर्व को प्रत्येक स्त्री पसन्द करती है। किन्तु विनोद की ऊमस पैदा करने वाली गम्भीरता ने पुष्पा को मन-ही मन इसलिए झुँझला दिया कि पुरुषत्व का अहंकार नारीत्व को उपेक्षणीय समझ कर चुप लगा गया।

---

(२)

जिस तरह नदी में बाढ़ आ जाती है तो उसमें अनियमितता पैदा होकर अनर्थ का सूत्रपात कर देती है, उसी तरह मनुष्य की बुद्धि में भी कभी बाढ़ आ जाती है। बाढ़ आ जाने से न केवल नदी-तट के वासियों का विनाश होता है बल्कि नदी की चारुता का भी अन्त हो जाता है। कीचड़ और नाना प्रकार की गन्दी चीजें जो नदी के तल में छिपी होती हैं, बाढ़ के कारण ऊपर आ जाती हैं और जल को अपेय बना देती हैं। ठीक इसी प्रकार जब किसी की बुद्धि में बाढ़ आ जाती है तो भीतर की सारी गन्दगी को वह बाहर की तरफ बिखेर देती है।

विनोद की बुद्धि में भी एकाएक जब बाढ़ आ गयी तो उसके मित्र विशेष रूप से व्यग्र हुए और उन व्यग्र होनेवालों

में मनोहर बाबू प्रधान थे। एक दिन संध्या समय एक मोटी-सी पुस्तक लिए जब विनोद गङ्गा-तट की ओर चला तो मनोहर अनाहूत पीछे लग गया। दोनों मित्र गङ्गा-तट पर चुपचाप पहुँचे। सूर्यास्त हो चुका था और संध्या की सुनहली विभा गङ्गा की लहरियों पर बरस रही थी। राजहंस के स्वच्छ डैने की तरह पाल ताने हुए निस्तब्ध जाती हुई नौकाएँ उस संध्या के स्वर्णिम पट पर सचल चित्र की तरह दिखलाई पड़ती थीं। उस पार के हरित वन-रेखा के ऊपर सुनहली गोट की तरह दिनकर की अन्तिम किरणें अब भी चमक रही थीं। घाट की निर्जन सीढ़ियों से उतरते हुए मनोहर ने विनोद से पूछा—भाई, क्या होस्टल के कमरे में पुस्तक पढ़ने भर भी प्रकाश या साँस लेने भर हवा न थी जो तुमने यहाँ तक आने का कष्ट उठाया ?

विनोद गम्भीर स्वर में बोला—न जाने क्यों पुण्यतोया का तट मुझे अपनी ओर आकर्षित करता है। इस तट पर बैठता हुआ मैं एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता हूँ।

मनोहर ने कहा—मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूँ। पर मुझे तो पुण्यतोया से अधिक संध्या की नीरवता में चुपचाप विलीन होनेवाले दिन की यह उदास शोभा आकर्षित करती है। तुम शायद सौंदर्य के अस्तित्व और उसकी महत्ता के कायल नहीं हो।

घाट की अन्तिम सीढ़ी पर बैठता हुआ विनोद बोला—मित्र, मेरी समझ से जो व्यर्थ है वही सुन्दर भी है। सौन्दर्य से और नित्य जीवन की उपयोगिता से कोई वैसा सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। देखो, इस पुस्तक की जिल्द पर जो सुनहले बेल-बूटे बने हैं, वे कितने सुन्दर हैं। पर पुस्तक की उपादेयता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। मनोहर कुछ गम्भीर होकर कहने

लगा—केवल उपयोगिता का चिन्तन करता हुआ मानव निश्चय ही एक ऊबा डालनेवाला और इससे अधिक अपने आप से ऊबा हुआ मशीन मात्र रह जायगा। क्षमा, दया, करुणा, आदि जितने गुण हैं उनका जब लोप हो जायगा तो भूख लग जाने पर निश्चय ही हम एक दूसरे को फाड़ खाने की चेष्टा करेंगे। जिसे तुम व्यर्थ कहते हो वही जीवन की सच्ची सार्थकता का आधार है।

कुछ क्षण चुप रहकर विनोद मानों अपने आप में डूब गया। इसी समय दो व्यक्तियों के आने की आहट मिली। मनोहर ने लौटकर देखा, पुष्पा अपनी एक सहेली के साथ झिझकती हुई धीरे-धीरे उतर रही थी।

मनोहर ने विनोद से कहा—भाई, पुष्पा देवी तुम्हारी खोज में यहाँ भी आईं।

इस मीठी चुटकी का वैसा प्रभाव विनोद पर नहीं पड़ा जैसा पड़ना चाहिए था। वह गङ्गा की शान्त लहरियों पर अन्यमनस्क-सा दृष्टि गड़ाए चुपचाप बैठा रहा। दो चार सीढ़ी नीचे उतरकर पुष्पा बोली - आज आप दोनों से अचानक यहाँ मुलाकात हो गयी। मैंने सोचा था, चलूँ अपनी चिर-संगिनी निर्जनता से मन बहलाऊँ।

मनोहर ने मुस्कराकर कहा—विनोद जैसे गुम-सुम व्यक्ति की उपस्थिति निर्जनता के अस्तित्व को खतरा नहीं पहुँचा सकती। और रहा मैं, सो यदि मुझे आदेश हो तो मैं टल जाने की बुद्धिमानी करूँ। पुष्पा इस कठोर व्यंग को सुनी-अनसुनी कर जाती यदि वह अकेली होती। पर एक सखी के साथ रहने के कारण उसका सारा अन्तःकरण लज्जा से भर गया। विनोद दीर्घ निःश्वास त्याग कर जब उठने का उपक्रम करने लगा तो पुष्पा

बोली—विनोद बाबू, मैं तो अपनी सखी का परिचय कराना चाहती थी और आप जाने………।

मनोहर बोला—विनोद अपने सभी परिचितों को मन-प्राण से भूल जाने की कसम खा चुका है। उस पर आप यह एक नये परिचय का भार न लादें तो अच्छा।

मुस्कराकर पुष्पा बोली—विधाता की ओर से मानव को यदि विस्मृति का वरदान न मिला होता तो यह सारी दुनिया पागलखाना बन जाती। यदि विनोद बाबू परिचितों को भूल जाना चाहते हैं तो मैं कहूँगी कि वे अपने प्रति न्याय कर रहे हैं। भले ही उनका यह न्याय दूसरों के प्रति अन्याय हो।

विनोद बोला—मैं सबसे पहले मनोहर को ही भूल जाना पसन्द करूँगा। क्योंकि इसने मेरे सारे मन को घेर रखा है। इसकी स्मृति से जिस दिन मुझे छुटकारा मिलेगा, मैं उसी दिन अपने आपको नये सिरे से उपलब्ध करूँगा।

पुष्पा अपनी सखी के कन्धे पर धीरे से हाथ रखती हुई बोली—आप हैं डॉक्टर मजूमदार की लड़की, मिस वीणा! आपने इसी वर्ष कालेज की पढ़ाई से छुट्टी पायी है। कल जब मैंने आपके अकाल सम्बन्धी विचारों की चर्चा इनसे की, जो विचार आपने उस दिन मीटिंग में प्रकट किए थे, तो इनके पिता ने चौंककर कहा कि—'जिसके ऐसे उग्र विचार हैं वह निश्चय ही पक्का निहलिस्ट है।' वीणा सक्रिय राजनीति के प्रति अनुराग रखती हैं। अतएव आपसे परिचय प्राप्त करने के लिए इनका उत्सुक होना स्वाभाविक है।

विनोद ने देखा, वीणा मुस्कराती हुई आँखों से उसकी ओर देख रही है। वह छरहरे बदन की एक सुन्दरी है जिसके चेहरे से सुकुमारता कम और अकाल पक्वता अधिक झलक रही है, याने वीणा देखने में एक उद्वेग पैदा करनेवाली रमणी

की तरह जान पड़ती है न कि निर्दोष चिड़िया की तरह।

विनोद ने विनय-पूर्वक कहा—"मैं मिस वीणा से परिचय प्राप्त कर विशेष सुखी हुआ।"

वीणा बोली—आपके दर्शन करने को मैं काफी उत्सुक थी, पर न जाने क्यों मेरी सखी ने मेरी उत्सुकता का वैसा आदर नहीं किया। मुझे दुख है कि मैं आपसे कुछ वैसी बात-चीत भी न कर सकी। क्योंकि यह समय पिता जी के साथ क्लब जाने का है।

इतना कहकर वीणा ने अपनी कलाई पर की जगमगाती हुई छोटी-सी घड़ी की ओर दृष्टि डाली। मनोहर से न रहा गया। वह बोला—देवीजी, न जाने किस मूर्ख ब्राह्मण ने मेरे इन मित्र महोदय का नाम 'विनोद' रक्खा था। यदि इनका नाम रखने का गौरव मुझे प्राप्त होता तो मैं 'निराकार' या 'नीरव' ऐसा ही कुछ रखता।

संध्या के आँगन में गोधूलि उतरी और एक बड़ा-सा तारा आकाश से झाँक कर मानो यह देखने लगा कि वसुधा ने रजनी रानी के स्वागत की तैयारियाँ पूरी कर रक्खी हैं या नहीं।

---

(३)

वीणा और पुष्पा का जाना यद्यपि एक असम्पूर्ण सुख-स्वप्न की तरह था, फिर भी विनोद की अन्यमनस्कता ज्यों की त्यों बनी ही रही। मनोहर, जो भीतर ही भीतर कुछ उदास हो चला था, खिन्न स्वर में बोला—भाई विनोद, यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारे विचारों में इतनी नीरस तल्लीनता कैसे आ गयी। मैं निहलिस्ट शब्द का अर्थ जानता हूँ

और मुझे यह स्वीकार कैसे हो सकता है कि तुम्हारे जैसा एक होनहार नवयुवक भी निहलिस्ट हो सकता है।

विनोद धीरे से बोला—मित्र, तुम तो निहलिस्ट शब्द के मानी जानते भी हो, मैं तो जानकर भी जानना नहीं चाहता। तुम जरा सोचो, यदि किसी व्यक्ति का सारा शरीर कुष्ठ रोग से गल-सड़ जाय तो उसके लिए जो सबसे अच्छी दवा चुनी जा सकती है वह होगी मौत। कटकर गिरी हुई उँगलियों और नाक की गली हड्डी को फिर से पूर्व रूप में लाने के लिए एक भी उपाय आज तक प्रकाश में नहीं आया है। यही अवस्था तुम्हारे सामाजिक संगठन की है। मैं मूर्खों के स्वर्ग में रहना क्यों पसन्द करूँ जबकि वह बुद्धिमानों के नरक से भी गया बीता है।

मनोहर एक बहुत बड़े जमींदार, या यों कहिए कि एक छोटे-मोटे राजा का एकलौता है। उसके बचपन का आरम्भ फूल से भरी क्यारियों में खेलकर हुआ और यौवन का श्री गणेश हुआ रंगीन स्वप्नों के झूले पर। जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन उसने किस्से-कहानियों में पढ़ा था। काल्पनिक सत्य ही उसका सब कुछ रहा है। वास्तविक सच्चाई की लूलपट का सामना उसके फूल जैसी खिली हुई जवानी को नहीं करना पड़ा। मनोहर ने अपने जिस रंगीन चश्मे के भीतर से अपनी दुनिया को देखा है, वह चश्मा उसके संस्कार का है। और विनोद ? विनोद के लिए जो सोचने का मापदण्ड विधाता ने प्रस्तुत किया था, वह कटु सत्य का था। मनोहर भीतर ही भीतर सिहर उठा और बोला—संसार में सुख भी है और दुख भी। फिर तुम अपने लिए दुख का ही चुनाव क्यों करते हो ? क्या यह मैं पूछ सकता हूँ ? अवश्य पूछो—विनोद दीर्घ निःश्वास त्याग कर बोला—तुम्हें अपनी

उत्सुकता मिटाने के लिए सब कुछ पूछने का अधिकार है। अपनी ओर से मैं तुम्हें केवल इतना ही कहूँगा कि मानव दो प्रकार के होते हैं। पहला प्रकार है आत्म-पीड़कों का और दूसरा पर-पीड़कों का। जहाँ तक अभाव याने गरीबी का सम्बन्ध है, हमारे कोटि के मानव आत्म-पीड़क ही कहे जायँगे, पर-पीड़क नहीं। क्योंकि पर-पीड़न की क्षमता हममें नहीं है और न आदत है। अच्छा हो कि पर-पीड़कों के सम्बन्ध में मुझसे कुछ पूछने की आवश्यकता ही न समझो।

मनोहर गंगा के वक्षस्थल पर झिलमिलाने वाले अनगिनत ताराओं के प्रतिबिम्ब को देखता हुआ थका-सा बोला—तो तुम आत्म-पीड़क हो। तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि तुम्हारी इस आदत से दूसरों को जो पीड़ा पहुँचती है, यह तो पर-पीड़न ही है।

विनोद उठने का उपक्रम करता हुआ कहने लगा—यद्यपि मैं तुम्हारे इस तर्क से सहमत नहीं हूँ, फिर भी तुम्हारे बोलने की स्वतंत्रता का मैं आदर करता हूँ। मैं तुम्हारी प्रत्येक बात सुनूँगा।

मनोहर हँसा और बोला—मित्र, तुम तो ठीक "गैरीवाल्डी" की तरह बोले। अच्छा, यह तो बतलाओ, तुम्हारे पीछे देवियों का जो सरस दल उमड़ पड़ा है, इसके मानी क्या हैं?

विनोद ने कहा—मैं इस ओर से उदासीन हूँ। मैं यह लेखा-जोखा रखना पसन्द नहीं करता कि कौन मेरा क्यों तिरस्कार करता है और किसके हृदय में मेरे प्रति आकर्षण है। हमारे जीवन का व्रत महान होना चाहिए। तुच्छता की वेदी पर महानता का बलि प्रदान कर देना उचित नहीं मनोहर। ये देवियाँ हमारे चमड़े को ही देखती हैं और उसी पर अपनी राय कायम कर लेने की गलती करती हैं। यदि इस बीस साल

के शरीर के भीतर छिपी रहने वाली छियासी साल की वीभत्स "जरा" को देखें तो इनके होश हिरण हो जायँ।

मनोहर बोला—मैं हाथ जोड़ता हूँ भैया, कृपया अपनी इस छियासी साल की प्रियतमा को अपने ही हृदय में छिपाए रक्खो। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यदि तुम्हारा वश चले तो वसन्त की आलस्य-भरी पीत शोभा को तुम पवित्र गोबर से लीप-पोत कर सदा के लिए समाप्त कर डालो। वास्तविकता के प्रति जो तुम्हारा वेगवान् अनुराग है, वह भयंकर है। विनोद मुस्कराकर चुप लगा गया, तो मनोहर ने कुछ चिढ़कर कहा—देखो विनोद, प्रकृति के द्वारा कहो या परमात्मा के द्वारा कहो, हमें जो जीवन प्राप्त होता है, उसे सुन्दर बनाना तो हमारी ही बुद्धि का काम है।

विनोद बोला—यही तो कर रहा हूँ भैया। आज तक सुन्दरता की कोई निश्चित परिभाषा सुनने में नहीं आई। तुम्हें यदि ताराओं से भरी यह सुन्दर रात भाती है तो किसी दूसरे को लू-लपटों वाली जेठ की दोपहरी भी भली लग सकती है। रुचि-भिन्नता के मानी मूर्खता तो नहीं हैं। सौन्दर्य परखने की कोई एक कसौटी आज तक देखने सुनने में नहीं आई। मैंने माना कि पुष्प या वीणा मूर्तिमान कला हैं, पर जिस चीज की हम प्रशंसा करते हैं, वह हमारे समस्त अन्तःकरण को भी भर दे, यह कोई जरूर नहीं है। हमें तो चाहिए यह कि अच्छा को अच्छा और बुरा को बुरा कहते हुए उदासीन भाव से आगे बढ़ जायँ। यह संसार केवल खेलने का खिलौना मात्र है, न कि जीवन का चरम और परम तत्व।

मनोहर की झुंझलाहट और भी बढ़ गयी। वह घाट के ऊपर पहुँच कर बोला—यदि तुम्हारा यही हाल रहा तो किसी न किसी दिन तुम अपने साथ अपनों को भी ले डूबोगे।

विनोद यद्यपि काफी गम्भीर था फिर भी मनोहर के इस 'नावक के तीर' ने एक गम्भीर घाव किया। वह कुछ सोचकर बोला—भाई, अपना कहे जाने लायक इस संसार में कोई है भी, जिसे मैं अपने साथ ले डूबूँगा। मैं तो स्वयम् एक भौगोलिक भूल हूँ, जिसे होना तो कहीं चाहिए पर वह है कहीं।

स्नेह, भावुकता और अपनापन के आवेश में मनोहर यह कहने जा रहा था कि मैं तुम्हारा अपना हूँ। पर इतना बड़ा सत्य, जिसे प्रमाणित करने के लिए अपने आप को होम देना पड़ता, उसके मुँह से नहीं निकल सका। मनोहर यह अनुभव कर रहा था कि उसकी संस्कार-जन्य निर्बलता उसे पवित्र सर्वहारा के पथ पर आत्मोत्सर्ग करने से रोक रही है, जो एक लज्जापूर्ण कायरता है। मनोहर यह समझ रहा था कि अपनापन के दाव पर वह अपने आपको अन्तिम बाजी के रूप में रखने से झिझक रहा है। सच्ची बात तो यह है कि मानव इसके पहले कि दूसरों को धोखा दे वह अपने आपको ही धोखे में फँसा लेता है। मनोहर को उसकी आदत के प्रतिकूल चुप देखकर विनोद को कुछ आश्चर्य हुआ। दोनों साथी खुली हुई सड़क पर आ गये, जहाँ बिजली की बत्तियों से जगमगाहट भरी हुई थी। विनोद ने स्वच्छ प्रकाश में देखा—मनोहर का चेहरा उदास और कुछ इस तरह का दिखलाई पड़ रहा है जैसे उसके हृदय में द्वंद हो रहा हो। आज से पहले स्वच्छन्द झरने की तरह हर घड़ी खिलखिलाने वाले मुक्त पवन की तरह प्रत्येक क्षण जीवन की वर्षा करने वाले अपने निर्दोष साथी को कभी इतना उदास विनोद ने नहीं देखा था। मनोहर अपने रहस्यपूर्ण साथी के साथ ठीक उसी तरह चल रहा था जैसे कार्य के पीछे-पीछे उसका परिणाम।

४

स्वाभाविक मौत से मरा हुआ कौवा और अपनी घृणित ततोधिक बदनाम पेशे को स्वाभाविक रूप से त्याग करनेवाले किसी वकील को शायद ही किसी ने देखा होगा। हरनन्दन बाबू एक ऐसे ही वकील थे, जिन्हें कानून की लात खाकर सरकारी अदालत से कीर्तन समाज की ओर भाग जाना पड़ा था। यही थे विनोद के ऐसे पिता, जिस पर कोई मूर्ख पुत्र भी गर्व नहीं कर सकता। हरनन्दन बाबू की वकालत किसी समय काफी चल निकली थी और अपने अभागे मोवक्किलों से लूट-पाटकर उन्होंने जितना धन कमाया था, उससे कहीं अधिक और अमिट अपकीर्ति का ही अर्जन किया था। किसी मुकदमे में, जैसी कि उनकी आदत थी, झूठी गवाही दी थी; और उस गवाही का परिणाम यह निकला कि उनकी वकालत की सनद छीन ली गई। वकालत से छुटकारा पाकर उन्होंने कीर्तन-समाज की ओर मन लगाया। हरि-चर्चा उनका प्रधान विषय नहीं था, बल्कि इस बहाने वे अपने को दुनिया के सामने तो एक साधु पुरुष के रूप में उपस्थित करना चाहते थे, पर स्वयम् उनका ही घुँघराला मन उन्हें साधु स्वीकार नहीं करता था। बीस-पच्चीस वर्ष तक लगातार बेशर्मी का पेशा करते हुए उन्हें ऐसी आदत हो गई थी, कि वे किसी भी ऐसी बात पर शर्माना पसन्द नहीं करते थे—जिस बात पर शैतान भी लज्जित हो सकता है। जगह-जमींदारी और लेन देन का व्यापार भी उनका कुछ कम न था। हरनन्दन बाबू का बड़ा पुत्र, जो स्कूल से ही अपनी "बौद्धिक विचित्रता" के कारण निकाला जाकर एक अधकचरा गृहस्थ बन चुका था, उनका पूर्ण समर्थक था। दूसरा पुत्र था विनोद, जो कॉलेज की शिक्षा प्राप्त कर रहा था

और एक तटस्थ वृत्ति का था। गर्मी की छुट्टियों में जब विनोद घर लौटा तो उसने दरवाजे पर पहुँचते ही देखा कि उसके कीर्तिमान पिता और बड़े भाई इसलिए अपस में मारपीट करने को उतारू हैं कि "श्री कृष्ण की पटरानी राधा थीं या रुक्-मिनी।" गाँव के बड़े बूढ़े भी इस रुचिकर तथा तथ्यपूर्ण वाक्-युद्ध में भाग ले रहे थे, और कुछ विशेष उत्सुक व्यक्ति इसलिये मन-ही-मन झुँझला रहे थे कि बातचीत बन्द होकर एकबारगी मारपीट ही क्यों नहीं शुरू हो जाती। विनोद ने यह घृणित दृश्य देखा तो उसे बड़ी निराशा हुई। कुछ लोगों ने कहा—विनोद आ गये, अब इनसे ही पूछ लीजिये कि राधा पटरानी थीं या रुक्मिनी! विनोद के बड़े भाई चिल्लाकर बोले—जो मैं कह रहा हूँ, वही ठीक है, बाबू जी का सिर फिर गया है।

कुछ लोगों ने इस परम और चरम सार्थक युक्ति का सिर हिलाकर समर्थन किया और कुछ लोगों ने क्रोध से आँखें तरेर कर वक्ता की ओर देखा। विनोद ने अपने बिस्तर वगैरह, जो एक कुली के सर पर था, यथास्थान रखवाकर अन्तःपुर की ओर जाने का उपक्रम किया, क्योंकि माता का चरण स्पर्श करना था। वृद्ध हरनन्दन बाबू चीखकर बोले—विनोद! तुमने कालेज में संस्कृत पढ़ा है। श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिनी नहीं; राधा थीं।" विनोद ने हाथ जोड़कर कहा—"बाबू जी, मैं ऐसे बकवाद से घृणा करता हूँ; आप कोई दूसरा निर्णायक चुन लें। यदि मैं जानता कि बीसवीं शताब्दि से हटकर फिर सोलहवीं शताब्दि के वातावरण में जा रहा हूँ तो यहाँ आता ही नहीं।"

विनोद की ऐसी अभक्तिपूर्ण उक्ति सुनते ही हरनन्दन बाबू और उनके ज्येष्ठ-पुत्र-रत्न प्रमोद, दोनों अपना मतभेद भूलकर

फूत्कार करते हुए उसकी ओर देखने लगे और सम स्वर में चिल्ला उठे—हम ऐसी अधार्मिक बात सहन नहीं कर सकते। "हरिहर निन्दा सुनै जो काना······।"

विनोद ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा—भैया, बाबू जी जो कुछ भी कर रहे हैं, उन्हें करने दीजिये; पर आपके लिए इस तरह की बातें अशोभनीय हैं। प्रमोद ने क्षोभ से औरतों की तरह दोनों हाथ नचाते हुए कहा—क्या प्रभु-चर्चा किसी खास व्यक्ति के लिये ही "रिजर्व" है। जिस गद्दी के बाबू जी शिष्य हैं; उसी गद्दी का मैं भी हूँ। म्लेच्छ भाषा पढ़ने से तुम्हारी बुद्धि पतनशील हो गई है।

चारों ओर से प्रमोद की इस उक्ति का समर्थन हुआ तो उसने गर्व से अपने उस पिता की ओर देखा, जिसने म्लेच्छ भाषा में ही चालिस साल पहले दो-दो डिगरियाँ प्राप्त की थीं। विनोद चुपचाप अन्तःपुर की ओर चला गया। उसने देखा—उसकी माँ और भाभी दरवाजे के पास ही अभय चित्त से बैठी, पिता-पुत्र के वाक्-युद्ध के फला-फल की ओर उत्कण्ठा भरे हृदय से देख रही हैं। विनोद को अचानक अपने सामने देखकर उसकी माँ कमला विशेष पुलकित हुई और उसकी भाभी का सारा शरीर झनझना उठा। कुशल क्षेम के बाद प्रमोद की स्त्री मनोरमाने पूछा—बाबू! कॉलेज छुट्टी में तो प्रायः एक सप्ताह पहले ही हो चुकी थी। गाँव के दो लड़के, जो कॉलेज में ही पढ़ते हैं, आ गये, पर तुम वहाँ क्या करते रहे?

विनोद की माँ अपने थके हुए पुत्र के लिए स्नानाहार की व्यवस्था करने चली गई थी।

मुस्कराकर विनोद भाभी से बोला—कुछ काम ही ऐसे आ पड़े थे कि मुझे रुक जाना पड़ा।

मनोरमा विनोद की स्वाभाविक मुस्कराहट के जवाब में

घातक मुस्कान के साथ बोली—जब यहाँ रहते थे तब तो कहा करते थे कि, 'भाभी' कालेज में तुम्हारे बिना मेरा जी न लगेगा, सो चलो तुम्हारा नाम भी वहीं लिखवा दूँ। अब मुझ में ऐसी कौन-सी कमी पैदा हो गई भैया !

विनोद ने शान्त भाव से उत्तर दिया—भाभी, यह बात सच है कि माँ का स्नेह और तुम्हारा यत्न मेरे लिये कभी सब कुछ था, पर तुम दोनों ने ही तो मुझे स्वर्ग से गिराकर अतल सागर में डाल दिया। कमल के पत्ते पर जब तक ओस की बूँदें रहती हैं, वे मोती से होड़ करती हैं, किन्तु वहाँ से ढुलक जाने के बाद उन्हें अपने गौरवपूर्ण अस्तित्व से ही हाथ धो देना पड़ता है। अन्धी दुनियाँ भले ही ओसकण के इस महा आत्म-विसर्जन का दृश्य न देखे, पर जिन्हें आँख हैं, वे तो देखते ही कराह उठते हैं। तुम्हारे हृदय में कुछ पीड़ा नहीं होती भाभी ?

मनोरमा की आँखें भर आईं। वह अपने को सम्हालकर बोली—चलो बाबू, कपड़े उतार कर ठण्डे होलो।

धीरे-धीरे दिन चढ़ रहा था और हवा में शस्यहीन खेतों की धूल और बैशाख की लू भरने लग गई थी। धूल भरी हुई उत्तप्त हवा के झोंकों से नई-नई पत्तोंवाले वृक्षों में भी उदासी दिखलाई पड़ने लग गई थी। विनोद स्नानाहार से निवृत्त होकर अपने कमरे में चुपचाप लेट गया सभी दरवाजे और खिड़कियों को अच्छी तरह बन्द करके। दोपहरी का रूप विशेष उग्र हो चला था। सारा गाँव एक प्रकार से नीरव निस्पन्द-सा हो रहा था। गलियाँ निर्जन थीं। दूर-दूर तक फैले हुए खेत निर्जन थे। विनोद थकावट के कारण अपनी ठण्डी कोठरी में लेटा हुआ, इच्छा न रहते हुए भी, मीठी नींद के हलके झोंकों की उपेक्षा करना नहीं चाहता था। इसी समय

धीरे से दरवाजा खोलकर सुखस्वप्न की तरह मनोरमा ने घर में प्रवेश किया। विनोद ने कुछ घबराकर पूछा—भाभी तुम ! इस समय ?

मनोरमा बहुत धीरे से बोली—बाबू ! सभी सो रहे हैं, अकेलापन काटे खाता है। महीनों के बाद तुम आये और आते ही सारे गाँव के बैठे-ठालों ने तुम्हें घेर लिया। मैं मन-ही-मन तुमसे बातें करने के लिये ललचाती ही रह गई।

विनोद उठ बैठा और बोला—कहो भाभी क्या आदेश होता है ?

मनोरमा बोली-मैं तुम्हें एक शुभ सम्वाद सुनाने आई हूँ।

विनोद ने विनोद से कहा—क्या भाभी मैं शीघ्र ही "चचा जी" होने तो नहीं जा रहा हूँ ? मेरे लिये तो इससे बढ़कर दूसरा कोई शुभ सम्वाद हो भी नहीं सकता।

उचित तो यह था कि इस मीठी चुटकी से मनोरमा लज्जित होती। उस युवती के यौवन से गदराये हुए गाल लज्जा के सिहरन से आरक्त हो जाते, पर ऐसा न होकर उसके चेहरे पर दुःख की एक धुँधली छाया झलक उठी और वह अपने दीर्घ निश्वास को किसी तरह दबाकर बोली—बाबू ! अब तुम भी ऐसी बातें बोलने लगे, खैर सुनो—इसी ज्येष्ठ में तुम्हारा विवाह होने जा रहा है।

यद्यपि मनोरमा ने इस सम्वाद को "शुभ सम्बाद" का नाम देकर कहने की सूचना दी थी, पर उसके स्वर से और ततोधिक उसके चेहरे से यही स्पष्ट होता था कि यह तथा-कथित "शुभ सम्वाद" उसके लिये महा-अशुभ सम्वाद मात्र है, जिसे वह लोकमत के दबाव में पड़कर "शुभ" कहने को वाध्य थी किन्तु उसका हृदय इसे "अशुभ" कह रहा है।

विनोद सहसा गम्भीर होकर बोला—भाभी ! यह तो मेरे

बलिदान का सम्वाद है। मुझे आश्चर्य है कि तुम भी इसे शुभ सम्वाद कह रही हो! मैं उद्देश्यहीन व्यक्ति हूँ—वैवाहिक जीवन मेरे लिये अभिशाप होगा। विनोद के इस कथन से मनोरमा के हृदय में तृप्ति और एक छिपा हुआ सन्तोष का जो प्रदीप झिलमिला उठा, उसका प्रकाश क्षण भर के लिये उसकी कजरारी और रस विह्वल आँखों में भी झलक पड़ा। कृत्रिम आश्चर्य और दुःख के भाव अपने चेहरे से प्रकट करती हुई मनोरमा बोली—तो जन्म भर माला फेरने का ही विचार है क्या बाबू? मैं तो सुखी होने से रही—तुम्हें सुखी देखकर ही अब मुझे सुखी होना है—क्या······।

विनोद बीच में ही बोल उठा—भाभी, यों ही खड़ी रहोगी या बैठोगी भी? यहाँ आसन, पादार्घ्य की व्यवस्था तो है नहीं, एक चटाई है; यदि विशेष कष्ट न हो तो इसी को सौभाग्य प्रदान करो।

मनोरमा ने छिपी हुई आँखों से उस अधखुले दरवाजे को देखा जिससे होकर वह भीतर आई थी। वह मुड़ी और उस दरवाजे से एक बार झाँककर बाहर की ओर देख लेने के बाद बहुत ही हल्के हाथों से उन्हें इस तरह बन्द कर दिया, जिससे बन्द होते समय उन पुराने दरवाजों से चरमराहट की आवाज न निकलने पावे। इसके बाद वह विनोद से कुछ दूर पर आकर बैठ गई। मनोरमा ने अनुभव किया कि उसका हृदय अस्वाभाविक रूप से धड़क रहा है और रह-रहकर उसके कान गरम हो उठते हैं। किन्तु विनोद का ध्यान किसी दूसरी ही ओर था। वह स्वस्थ चित्त से बैठा हुआ अपने भीतर के मन्थन से उलझ रहा था। विवाह? आखिर प्रत्येक व्यक्ति के लिये विवाह आवश्यक क्यों है? संसार का प्रत्येक काम आवश्यकता के अनुसार ही किया जाता है। जिसे "घर" की कोई जरूरत

नहीं है, उसे "घरनी" की भी कोई जरूरत नहीं। विनोद अपने विचारों के सीमाहीन गगन में डैने फैलाकर जीवन भर उड़ना ही रहना चाहता था। उसे न तो किसी हरी भरी डाली की आवश्यकता थी और न उस डाली पर बने हुए सुखदायक घोंसले की। मनोरमा अपनी भरी हुई गोरी-गोरी कलाई की चुभी हुई चूड़ियों को इधर-उधर घुमाती खिसकाती हुई विनोद की ओर कभी-कभी छिपी आँखों से देख लेती थी। किन्तु विनोद देख रहा था असीम की ओर। एक के सामने उसके रहस्यपूर्ण हृदय की रंगीनियाँ थीं; तो दूसरे के सामने सारे विश्व ब्रह्माण्ड का हाहाकार; एक यदि बसन्त की फूलों से भरी हुई अलसित एकान्त दोपहरी के उद्वेगपूर्ण सपनों में सराबोर थी, तो दूसरा क्षितिज से उठनेवाली जेठ की ज्वालामयी महा विभीषिका को देखकर आत्मविस्मृत हो रहा था। इधर दोपहरी का रूप अधिकाधिक उग्र होता जा रहा था।

---

(५)

नगर के कोलाहल से दूर, मिलों की अनगिनत उन लम्बी काली चिमनियों से दूर, जिनके नीचे "नरमेध" की नरकाग्नि हर घड़ी धधका करती है, पक्की काली सड़कों पर निःशब्द अनवरत दौड़ती रहने वाली मोटरों की रेलपेल, पार्कों और सिनेमा गृहों में अपने मरम्मती रूप की जगमगाहट फैलाने वाली "सार्वजनिक-तितलियों" से भी काफी दूर पर पहुँच कर विनोद ने तृप्ति की एक सांस भी जी भर कर ले न सका था कि उसने आपको आशाहीन स्थिति में पाया। ग्राम्य-लक्ष्मी का रूप उसने देखा दरिद्रा देवी की तरह, गली-गली उजाड़ खेतों में और बन्द घरों के भीतर रोता बिलखता हुआ। अन्न-

पूर्णा को उसने देखा इस दरवाजे से उस दरवाजे पर अलख जगाते, अपना फटा आँचल फैलाकर मुट्ठी भर अन्न की भीख माँगते। उस आदर्शवादी नवयुवक का हृदय तिलमिला उठा और उस समय वह बहुत ही आहत हो गया जब उसने देखा कि उसके यहाँ "अखण्ड-कीर्तन" की पूर्ण आहुति का विराट आयोजन किसानों से मनमाने चन्दे वसूल करके किया जा रहा है। पड़ोसी जमींदार बाबू महाबीर सिंह, जिन्होंने अपनी उम्र का अधिकांश भाग वकालतखानों में और जालसाजों के घरों में व्यतीत किया था, इस पुण्य समारोह में विशेष उत्साह से भाग ले रहे हैं। अपनी ढलती हुई उम्र का भार चाँदी की मूठ लगी हुई छड़ी पर डालकर और नाक की नोक से आरम्भ करके घुटी हुई खोपड़ी के ठीक बीचोबीच तक अनावश्यक लम्बी तिलक लगाये दिव्य रामनामा ओढ़े बाबू महाबीर सिंह वकील साहब के प्रत्येक ऐसे दिखाऊ और धूर्ततापूर्ण कार्य में जी जान से सहयोग देते थे, जिससे कीर्ति के साथ आर्थिक लाभ भी होता था।

विनोद ऐसे व्यक्तियों से बहुत ही घिनाता था और उसका यह घिनाना उस दिन सीमोल्लंघन कर गया, जब कीर्तन समारोह की पूर्णाहुति के लिये व्यापक रूप से चन्दे उगाहने का घृणित काम उसके पिता और महाबीर बाबू ने अपनी ग़रीब प्रजा में आरम्भ कर दिया। धर्म के नाम पर, भगवान के पवित्र नाम पर और साथ ही छापे तिलक के नाम पर इन दोनों महानुभावों ने जिस कुकर्म को प्रश्रय दे रक्खा था, उसके प्रतिकूल विनोद का मन बेतरह उद्विग्न हो उठा था। उसने एक दिन अपने भक्तराज पिता से कहा—बाबूजी, गाँवों में घूमकर मैंने जो अनुभव प्राप्त किया है, उससे यही सिद्ध होता है कि आप लोगों के इस समारोह ने किसानों के मन में

क्षोभ का सृजन कर डाला है। हाथ के माले को नीचे रखते हुए हरनन्दन बाबू ने अपने दन्तविहीन मुँह को विस्फारित करके कहा—सो कैसे? यह तुमसे किसने कहा? प्रभु-चर्चा तो सबको प्यारी होनी चाहिये।

विनोद शान्त किन्तु दृढ़ स्वर में बोला—अनुभव ने कहा, और आपके इन तरीकों ने कहा। मैं किसका नाम बतलाऊँ; मुझे तो यह विश्वास था कि आपकी अनुभवी आँखें भी सब कुछ देख रही होंगी किन्तु शायद आप देखकर भी देखना नहीं चाहते।

इसी समय हाथ में सोने का एक "बुलाक" लिये प्रमोद ने प्रवेश लिया और अपने पिता से पूछा—

बाबू जी, यह एक बुलाक मैंने अपने लिये मँगवाया है, क्या आपके लिये भी मँगवा दूँ या एक से ही काम चल जायगा।"

हक्का-बक्का-सा होकर विनोद बोल उठा—यह बुलाक! और आप लोगों के लिये!!

तिक्त स्वर में प्रमोद ने उत्तर दिया—तुम क्या जानो इन बातों को। म्लेच्छ भाषा पढ़ने से······।

विनोद बोला—भैया! भारत छोड़कर और किस देश में पुरुष "बुलाक" पहनते हैं? आखिर आप लोगों ने अपनी संस्कृति को सदा के लिये समाप्त कर डालने की कसम तो नहीं खा रक्खी है?

हरनन्दन बाबू स्नेह भरे स्वर में बोले—विनोद, हम श्री महारानी जी की सखियाँ हैं। आज "रासलीला" का कीर्तन होगा। हम सखी रूप में सरकार की आराधना करेंगे। 'तुम उपासना के इन गूढ़ रहस्यों को नहीं समझते—मुझे इसका दुःख है।

विनोद अव्यक्त मानसिक क्षोभ और असफल क्रोध के आघात-प्रतिघात से रुआसा-सा होकर कहने लगा—बाबू जी, जो जी में आवे आप लोग किये जाइये। मेरी तो ऐसी इच्छा होती है कि ऐसे दृश्य देखने के पूर्व ही अपनी जान दे दूँ। दुनियाँ किधर जा रही है, क्या चाहती है और कैसे उतार-चढ़ाव से होकर उसे आगे बढ़ना पड़ रहा है, इसकी ओर आप लोगों का ध्यान होना चाहिये, न कि काल्पनिक सखी बनकर अनाचार का प्रसार करना। ये बच्चे ऐसे गन्दे दृश्यों को देखर क्या सोचेंगे और कैसा आदर्श ग्रहण करेंगे ? क्या इस दुःखी देश को इन्हीं चीजों की जरूरत है !!!

विनोद की इस सहज उक्ति ने दोनों भक्ति-विह्वल-भक्तों को विशेष रूप से क्रुद्ध कर दिया है। निरुत्तर होकर प्रमोद अपनी जलती आँखों से चुपचाप विनोद को दग्ध करता रहा। और हरनन्दन बाबू ने आँखों में आँसू भर कर, जैसी की उनकी आदत थी और इस आदत पर उन्हें गर्व भी था, अपने दोनों कान बन्द करके, सकरुण कण्ठ से—हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे कृष्ण, का आर्तनाद करने लगे।

विनोद जब झुँझलाया हुआ उठकर बाहर निकला तो किवाड़ की ओट से मनोरमा ने उसे बुलाया। निकट जाने पर वह अधिकारपूर्वक बोली—मैंने बार-बार तुम्हें मना किया बाबू, तुम इन अभागों के बीच में न पड़ो, न पड़ो, पर······। स्नेहावेग से मनोरमा का कण्ठ वाष्परुद्ध हो गया। उसकी आँखें सजल हो उठीं। उस युवती का अतृप्त स्नेहाकुल हृदय विनोद को समस्त परिवार से बिल्कुल अलग करके ग्रहण कर रही थी। विनोद घबराया-सा मनोरमा का स्नेहपूर्ण रोष और झुँझलाहट से भरा हुआ चेहरा देखता रह गया। अपने को स्वस्थ करके मनोरमा फिर बोली—कहाँ चले ? एक बार भीतर

नहीं आओगे बाबू ! इतना कहकर मनोरमा कुछ ऐसे अधिकार पूर्वक मुड़कर घर के भीतर चली कि विनोद मन्त्राकर्षित-सा पीछे-पीछे चला गया। वह अपने को रोकना चाहता था पर प्रतिरोध की शक्ति ने जवाब दे दिया।

विनोद की माँ अपने पति और पुत्र के लिये भींगे कपड़ों से फलाहार की व्यवस्था कर रही थी और रसोइया ब्राह्मण भी भींगी धोती पहने अपनी मालकिन का साथ दे रहा था। अखण्ड कीर्तन जब से आरम्भ हुआ था, दोनों पिता पुत्र दिव्य गोदुग्ध और गव्य घृत आदि पुष्टि और तुष्टि-वर्द्धक द्रव्यों के सहयोग से प्रस्तुत होनेवाले पवित्र भोजन ही ग्रहण कर रहे थे। यह व्रत, जिसे सीधी-सादी भाषा में "स्वल्प फलाहार" कहा जाता है, प्रायः तीन महीने से लगातार चालू था। गाँव के किसानों से, बिना एक छदाम दाम दिये, श्रीभक्त-भयहारी-गोवर्द्धनधारी—माखन चोर की उपासना के लिये जो घी वसूला जाता था, उसी से दोनों भक्तों का विधिवत फलाहार प्रस्तुत होता था। इस प्रकार नारायण के नाम पर उनके अनन्य भक्तों का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर विकास पर था। हरिनन्न बाबू की पुरानी नाँद पर एक और दूसरी नाँद झलकने लग गई थी।

मनोरमा ने विनोद की ओर स्नेहपूर्ण क्रोध और उससे भी अधिक नारीत्व के अधिकार के साथ देखा और कहा—मैं तुम्हें फिर भी कहे देती हूँ, यदि तुम उन दोनों के बीच में पड़े तो मैं······।

विनोद का हृदय न जाने क्यों अचानक धक् से करके रह गया। नारीत्व की आँच के सामने उस दुर्धर्ष पुरुष को झुक जाना पड़ा। उस बच्चे की तरह, जो शैतानी करता हुआ रंगे हाथों पकड़ा गया हो, सभय कातर स्वर में विनोद बोला—

मैं······मैं क्यों उन लोगों के बीच में पड़ूँगा भाभी !

ज़रा तुम्हीं सोचो तो, बाबू जी और भैया औरतों की तरह अपनी अपनी नाक में "बुलाक" पहनकर बेहूदी भीड़ के सामने नाचेंगे तो कैसा लगेगा।

क्रुद्ध मनोरमा के होठों पर मुस्कान की एक हल्की रेखा झलक कर विलीन हो गई। वह दीर्घ निःस्वास त्यागकर बोली—यह सब मेरे जले-कपाल का परिणाम है। जी चाहता है कि इस घर में आग लगाकर मैं उसी में जल मरूँ।

दुःख के आवेग में इतना कहकर मनोरमा स्वयम् ही लज्जित-सी हो गई। विनोद खिन्न स्वर में बोला—अब मैं यहाँ एक क्षण भी रहना पसन्द नहीं करूँगा। मेरे जाने के बाद तुम्हारा जो जी चाहे करना। विनोद के इस कथन से मनोरमा के हृदय को एक अव्यक्त तृप्तिपूर्ण उल्लास प्राप्त हुआ। उसे ऐसा लगा कि उसके मन में जो एक अतल स्पर्शी खन्दक है, वह उचित रीति से भरता जा रहा है। उसने अपने समस्त स्नेह और अपनी स्त्री मर्यादा का भार विनोद पर स्थापित करके आवेश के साथ कहा—मैं एक ओर सारे संसार को और दूसरी ओर केवल तुम्हें रखकर जब तोलती हूँ तो बाबू, मुझे ऐसा लगता है कि मेरे ही रत्न का पलड़ा भारी है। मैं तुम्हें प्राप्त कर ही आज 'सबला' हूँ बाबू! मैं तो जीने के लिये ही जी रही हूँ।

तुम यदि इस घर का त्याग करोगे तो फिर यह सम्भव नहीं कि मैं प्रातःकाल उदय होनेवाले दिन को भी देख सकूँ। मेरा मन सीमाहीन समुद्र का वह पक्षी है, जिसके लिये केवल वही जहाज़ आश्रय है जो लहरों पर खेल रहा है। भावावेग में इतना कहकर मनोरमा ने स्नेह-सिक्त आँखों से विनोद को इस तरह देखा कि विनोद की आँखें न जाने क्यों आप से आप किसी अनिर्वचनीय लज्जा के भार से नीचे झुक गई। अपनी मंज़ुल-मूर्ति भाभी के सामने कभी भी उसने ऐसी

मीठी और कसक पैदा करने वाली लज्जा का अनुभव नहीं किया था। इसी समय प्रमोद अपने आपको किवाड़, चौखट, दीवार और खम्भों से छू जाने से बचाता हुआ पवित्रता पूर्वक घर के भीतर आया और एक हुँकार करके सीधे रसोई घर की ओर चला गया। यद्यपि शताधिक बार मनोरमा और विनोद ने उस समय प्रमोद को अपने निकट आते देखा था, जब दोनों एक दूसरे के निकट बैठे हँस बोल रहे थे, पर उस दिन प्रमोद के आते ही दोनों के हृदय हठात् फड़क उठे और दोनों को ऐसा लगा कि दोनों अपराधी हैं। इस अकारण तथा अस्वाभाविक घबराहट का कोई प्रत्यक्ष कारण न तो विनोद खोज सका और न मनोरमा को ही कुछ पता चला। सच्ची बात तो यह है कि उसे इस घबराहट से एक प्रकार का तीव्र आनन्द ही मिला। विनोद सदा से आत्म-निग्रह करने का अभ्यासी था, और अपने आपके प्रति वह सदा सतर्क रहता था। उसने अपने हृदय की धड़कन की उपेक्षा नहीं की। उसने इन कई दिनों के बीच में मनोरमा से होने वालीं बोतो के ऊपर नजर अन्दाज किया और अपने मन की सूक्ष्माति सूक्ष्म गुप्त रूप से परिवर्तित गति को भी उसकी अणुविक्षण यन्त्र से भी अधिक शक्तिशाली बुद्धि ने उसके सामने स्पष्ट कर दिया। आत्म चिन्तन के द्वारा मनोहर से उसके मनकी जब एक भी धोखेबाजी छिपी न रह सकी तो उसका सारा अन्तःकरण तीव्र विरक्ति और धिक्कार से भर उठा। जब तक विनोद अपने प्रति असावधान था वह किसी गलत दिशा की ओर ऐसी सूक्ष्म गति से सिसक रहा था जिसका पता साधारण मनुष्यों को तब चलता है, जब लौटने के सभी दरवाजे सदा के लिये बन्द हो जाते हैं और विनाश क ।नरक उन्हें निगलना आरम्भ कर देता है। किन्तु विनोद

एक सतत् जागरुक व्यक्ति था और यह सम्भव नहीं कि उसका मन उसे किसी तरह भी छल सके।

और मनोरमा ? भग्नमनोरथा मनोरमा अपनी अतृप्त विह्वल भावनाओं से बेजार होकर सहज आत्म-चेतना गवाँ बैठी थी। वह एक युवती थी और उसका स्त्रीत्व स्नेह के रूप में किसी पर बरस पड़ने के लिये जल भरी घटाओं की तरह उमड़ घुमड़ रहा था। अपने भीतर की शून्यता को वह किसी प्रकार भर कर जीवन की सार्थकता और यौवन की कसक प्राप्त करना चाहती थी। प्रमोद उसका यद्यपि सामाजिक, धार्मिक और कानूनी भाषा में पति था, पर मनोरमा किसी मूर्तिमान पति की स्त्री न होकर अमूर्त पति की आशा भाषाहीन ऐसी पुजारिन बना दी गई थी, जिसके सामने धर्म और समाज लाठी लिये हर घड़ी इसलिये खड़े रहते थे कि पति पूज़न में वह पुजारिन जरासी भी त्रुटि या प्रमाद न करने पावे। उसका प्रत्यक्ष सोहाग उसके लिये अप्रत्यक्ष रूप से विडम्बना मात्र था।

हाथ की चूरियों और माँग के सिंदूर को जब मनोरमा देखती थी तो उसे इस बात का ख्याल हो जाता था कि वह किसी की "पत्नी" भी है। नवयुवती मनोरमा के लिये इतना ही पर्याप्त न था कि वह अपने को विवाहिता समझे, बल्कि वह गृहिणी, सचिव, सखा, शिष्या और इन से भी अधिक "ललित-कला" बनने की स्वाभाविक लालसा, जो किसी भी नवयुवती के हृदय में रहना गुनाह नहीं है, से सराबोर थी। भरा पूरा घर, सम्मान और निश्चिन्त जीवन मनोरमा के लिये सोने के पिंजरे का काम देते थे, जिसमें वह मुक्त गगन में अपने चित्रित पंख फैलाकर उड़ने की कामना करने वाली चिड़िया बन्द थी। उस पिंजरे के बाहर से बसन्त उसे पुकारता था, पतझड़ उसे अलसाता था और क्षितिज के आँगन

से उठने वाली जलभरी कजरारी घटायें उसके मन में मुक्ति का उद्वेग भर देती थीं। संकीर्ण पिंजरे के भीतर ही पंख फड़फड़ा कर जीवन के शेष दिन व्यतीत करने वाली उस उद्दाम लालसामयी मनोरमा के सामने जब यौवन के अक्षय वरदान की तरह आकर विनोद खड़ा हो गया तो उसने अपनी भावनाओं के प्रत्येक फूल को उस सुपुरुष के चरणों पर बिखेरने में एक नीरव तथा तीखा आनन्द का ही अनुभव किया। विनोद से मनोरमा प्रतिदान की कोई कामना स्वप्न में भी नहीं करती थी। वह एकान्त भाव से अपने मन के समस्त संचित स्नेह को लुटा देना चाहती थी, जो अब तक अव्यवहार्य रूप में अनाघ्रात पुष्प की तरह, बिना चखे हुये मधु की तरह उसके हृदय में संचित था और जिसके भार को, कसक को सहन करने में अब वह असमर्थ हो रही थी।

---

(६)

आखिर छुट्टी के दिन समाप्त हो गये और विनोद को मूर्खों के स्वर्ग से खिसक कर धनिकों के नरक में पहुँच जाना पड़ा। जब तक विनोद अपने गाँव में रहा उसे पृथ्वी की तरह आधा प्रकाशमान और आधा अन्धकाराच्छन्न ही रहना पड़ा। जब वह गाँवों में घूमता खुले खेतों में घूमता, आशा-भाषाहीन-किसानों के बीच में घूमता तो उसे ऐसा लगता कि उसके सामने प्रकाश का यहाँ प्रलय हो रहा है और वह मानव समाज के सबसे आहत अंग को बहुत ही निकट से देख रहा है। ऐसे दृश्यों के बीच में पाला-पोसा जाकर ही वह बढ़ा था। देहात की उस धूल में खेलकर ही वह बड़ा हुआ था, जिस धूल में असंख्य कातर आँखों के व्यर्थ आँसू

सूख चुके थे। विनोद उन्हीं खेतों में अपने बचपन को खेल खेल में खो चुका था ; जिन खेतों में यों तो अन्नपूर्णा सोने का सोहाग और सुख बरसाती हैं, पर उस सोहाग और सुख से सुखी होने वाले उन लोगों में नहीं होते, जिनके निर्दोष रक्त की प्रत्येक बूँद से संसार की मिट्टी का प्रत्येक कण युगयुगान्तर से सींची जारही है, विनोद का दृष्टिकोण उसकी अवस्था के साथ ही बदलता गया, जिसका ज्ञान उसे न था और वह बदलता बदलता यहाँ तक बदल चुका था कि उस नवयुवक का हृदय ही पथरा गया, अपने प्रति निर्मोही हो गया। गाँव से हटकर शहर की रंगीनियों में सराबोर होना विनोद के लिये जितना कष्टदायक था, उतना ही कष्टदायक था गाँवों में रह कर गाँवों को देखकर और सबसे अधिक गाँवों को समझकर खून के आँसू रोना। गाँवों में रहता हुआ वह शहर के होहल्ले में छिप जाने के लिये विकल हो उठता और शहर में रहता हुआ, प्रत्येक क्षण दम तोड़ने वाले गाँवों की ओर दौड़ जाने के लिये विकल हो उठता। इस बार विनोद अपने गाँव से कुछ विशेष आकर्षण और विकर्षण के भाव लेकर शहर की ओर जाने को प्रस्तुत हुआ। उसने अपने जीवन के धरातल को बुरी तरह बदलते देखा। मनोरमा विनोद के लिये एक ऐसी अँधेरी रात थी जिसमें एक भी दूर-दूर पर झिलमिलाने वाला तारा न था; वह केवल रात थी, विशुद्ध रात; और ऐसी रात कि जिसमें अपने को प्रकाश भी खो सकता है चमकी हुई बिजली भी अपने को गवाँ सकती है और शरत्काल की तरुणी ज्योत्स्ना भी विलीन हो सकती है। उस महा-तमिस्रा के सामने विनोद जिस छोटे से प्रदीप का सहारा लेकर आगे बढ़ा, उस प्रदीप की नाजुक हस्ती चीखकर बीच रास्ते में ही समाप्त हो गई। अभागा नवयुवक अपने दुर्भाग्य को ही टटोलता हुआ

बढ़ चला क्योंकि लौटने का एक भी उपाय शेष नहीं बचा था।

जाने के दो दिन पूर्व मनोरमा ने एकान्त पाकर और अपनी छिपी हुई कजरारी चंचल आँखों से इधर-उधर देखकर कहा—आखिर तुम चले ही। तुम्हें जाना था, तुम जा रहे हो। यद्यपि मैं तुम्हारे जाते समय आँसुओं की दो चार निरीह बूँदें तुम्हारे यात्रा-पथ पर उत्सर्ग कर सकती हूँ, पर बाबू! मैं ऐसा नहीं करूँगी। क्योंकि मैं जानती हूँ कि इन्हीं आँसुओं से मैं तुम्हें कभी बुलाऊँगी। अतएव इनको सुरक्षित रखना मेरे जीवन के लिये एक सलोना कर्त्तव्य होगा।

विनोद, जिसका हृदय उस पक्षी की तरह शून्य गगन में अपने थके हुये डैने फड़फड़ाता हुआ भाँवरे भर रहा था, जो अपने घोंसले को ही भूल चुका है, और इधर दिन शेष हो रहा है, क्षितिज से काली-काली घटायें उमड़ती-घुमड़ती चली आ रही हैं, मनोरमा की बातें सुनते ही चौंक पड़ा। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि वह अनजानते ही न जाने किस प्रबल आकर्षण के शत्-शत् रंगीन डोरों से बँधकर उस पथ पर इतनी दूर अग्रसर हो गया है कि जहाँ से लौटना आत्मघात है और आगे बढ़ना अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर अजस्र वज्रपात। उसे ऐसा लगा कि वह तो अपनी जगह पर ही खड़ा है, किन्तु वह जिस जमीन पर खड़ा है उस जमीन का टुकड़ा ही भयंकर गति से अलक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है। ऐसी अनन्योपायावस्था में पड़कर विनोद अपनी असमर्थता पर झुंझला उठा था, पर उसकी विफल झुँझलाहट मनोरमा की शोख मुस्कराहट के सामने टुकड़े-टुकड़े होकर सैंकड़ों बार बिखर चुकी थी।

विनोद बोला—भाभी मैं नहीं कह सकता, कि मैं क्यों यहाँ से जा रहा हूँ। पढ़ना तो बहाना मात्र है और मैं यह भी नहीं सोच

पाता कि मुझे कब किस लिये लौटना पड़ेगा। मैं तो यह पसन्द करूँगा कि मेरी विदाई यदि आँसुओं से हो तो मैं बुलाया जाऊँ तुम्हारी एक भीनी मुस्कराहट से। तुम ही जरा सोचो तो कि जिस अभागे की यात्रा का आदि और अन्त आँसुओं से ही भींगा हो, उसके दुर्भाग्य का भी कहीं ओर छोर है ? मैं अपनी ही अमूर्त-भावनाओं से रात दिन पिटा जाकर कातर रहता हूँ—मैं दया का पात्र हूँ।

मनोरमा मुस्कराने की चेष्टा करती हुई कहने लगी—बाबू, हम दोनों उन दो समानान्तर रेखाओं की तरह हैं, जिन्हें संसार का बड़ा से बड़ा रेखागणित का आचार्य भी नहीं मिला सकता। हाँ, रेखा खींचने वाला केवल इतनी ही दया कर सकता है कि हम दोनों रेखाओं का अन्तर कम से कम हो, पर भैया ! अन्तर तो रखना ही पड़ेगा। इस अन्तर को पूरी तरह यदि मिटा दिया जाय तो ज्यामिति इसे सहन नहीं कर सकती।

विनोद मनोरमा की बातें सुनकर अत्यधिक गम्भीर हो गया। उसके सामने वह सच्चाई अपने पूर्ण ओज के साथ स्पष्ट हो गई जिसका वह अनुभव तो करता था, पर ग्रहण नहीं कर पाता था। उस अभागे को ऐसा बोध हुआ कि जीवन और स्वयम् वह दोनों दो समानान्तर रेखाओं में हठात् परिणत हो गये।

विनोद कहने योग्य बात खोजता हुआ अन्त में जब थक गया तो बोला—भाभी तुम देखने में कितनी सौम्य, सरल हो, पर ज्यों-ज्यों मैं तुम्हें समझने की कोशिश करता हूँ, मुझे ऐसा लगता है कि मैं सारे तारा मण्डल को एक साँस में ही गिन डालने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

मनोरमा नटखट सी मुस्कराती हुई बोली—तो क्या मैं यह मान लूँ कि मैं तुम्हारे लिये एक बेबूझ पहेली हूँ ? मुझे भय

हो रहा है कि कहीं तुम मुझ पहेली को समझने की कोशिश करते-करते किसी दिन ऊब न उठो, और अपने इस प्रयत्न से ही सदा के लिये बाज आ जाओ। वह दिन मेरे लिये मौत का सन्देशा लायेगा और वह सन्देशा भेजने वाले होगे तुम। क्या तुम इसे पसन्द करोगे ?—शायद नहीं।

मनोरमा जैसी स्नेहमयी, रूपमयी और मनोरम मनोरमा के लिये मौत का सृजन जिस विधाता ने किया है, उसे विधाता न कहकर विनोद क्या कहे यह बात उसके समझ में नहीं आयी। वह बोला—भाभी, स्त्री होने के नाते तुम अमरत्व का वरदान देने वाली हो। तुम्हारे लिये क्या मौत सम्भव है।

मनोरमा ने गम्भीर होकर कहा—बाबू, नदी जब अपने समस्त शीतल जल का दान कर देती है तो उसके लिये बचता है केवल शुष्क बालुका समूह—यही उसकी मौत है। फूल अपनी समस्त सुषमा और सुगंधि, जब दान कर चुकता है तो उसके लिये केवल बिखर कर धूल में मिल जाना ही भर शेष बच जाता है, यही है उसकी मौत! इसी तरह हमारी जैसी स्त्रियाँ जब अपनापन के दुर्वह भार को सहन करते-करते अधीर होकर उससे छुटकारा पाने की छिपी हुई कोशिश करती हैं तो हमारी मौत हो जाती है। अपने आपको पूरी तरह रिक्त बना डालना ही मौत है। मैं अपने वर्तमान नाम-रूप के अत्यन्ताभाव को मृत्यु नहीं मानती।

विनोद दलदल में फँसे हुए उस अल्पायुषी अभागे व्यक्ति की तरह था, जो मौत के इस प्रचण्ड आलिंगन से छुटकारा पाने के लिये जितना ही प्रयत्न करता है, उतना ही धीरे-धीरे भीतर धँसता चला जाता है, मौत का आलिंगन दृढ़ होता जाता है।

आषाढ़ की काली घटायें मूर्तिमान तम की तरह आकाश

में उठ रही थीं और दिन का अन्त हो चुका था। हाथ में प्रदीप लिये विनोद की माँ उसी ओर आती दिखलाई पड़ी तो मनोरमा ने धीरे से विनोद का कन्धा छूकर कहा—माँ आरही हैं, अब मैं चली। तुम अधिक रात तक बाहर न रहना, कुछ आवश्यक बातें शेष रह गई हैं कहती हुई मनोरमा बगल की कोठरी में निःशब्द भाव से घुस गई तो विनोद के अस्त-व्यस्त दिमाग में भी यह बात बड़ी तेजी से उठी कि उसे भी अपनी माँ की नज़रों से अपने आप को छिपा लेना चाहिये। पर यह झिझक क्यों—? इस विराट और परम सार्थक—"क्यों"—का उत्तर उस घबराये हुए नवयुवक के पास न था और यदि था भी तो उसकी उखड़ती हुई बुद्धि में उस समय इतनी स्थिरता न थी कि वह रुक कर कुछ सोचे। वह भी चुपके से उसी कोठरी के भीतर चला गया जिसमें मनोरमा घुसी थी। अन्धकार-पूर्ण कोठरी में जब विनोद अचानक मनोरमा से टकरा गया तो वह अपने काँपते हुए गरम हाथों से अपना मुँह ढाँपकर बहुत ही विकल स्वर में धीरे से बोली—यह तुमने बहुत बड़ी भूल की बाबू!—हे भगवान, तुम यहाँ क्यों आये!" विनोद को तत्काल अपनी इस महा विनाशक भूल का ज्ञान हो गया किन्तु यह ज्ञान उसे तब हुआ जब उससे लाभ उठाने का समय समाप्त हो चुका था। यह बात सत्य है कि बहुतों में समझदारी केवल पछताने और रोने के लिये ही आती है, क्योंकि लाभ उठाने का समय तो कभी का समाप्त हो चुका होता है। पहली दुर्घटना की पूरक दूसरी दुर्घटना यह हुई कि प्रदीप लिये कमला उसी कोठरी के दरवाजे पर आकर रुकी!

× × ×

दो-तीन दिनों तक यदि विनोद और अपने घर पर ठहर

जाता तो कोई हर्ज न था। क्योंकि अभी छुट्टियों के समाप्त होने में एक सप्ताह की देर थी पर वह मनोरमा का स्मरण होते ही इतना अधिक लज्जित, भीत और कातर हो उठता था कि उसके लिए घर में एक क्षण भी ठहरना ठीक वैसा ही था जैसे किसी फाँसी पाये हुए कैदी के गले में रस्सी डालकर उसे मानसिक दण्ड देने के लिये दो चार घण्टे या अनिश्चित काल तक के लिये फाँसी की टेक्टी के नीचे कोई खड़ा कराये रखे, जो घटना विनोद को मठे की तरह मथ रही थी, उसे मनोरमा एक दम ही भूल चुकी थी। विनोद अपने आपको अपराधी मान कर अपने को धिक्कार रहा था। क्षण-क्षण पर उठनेवाली उस कैदी की मनोभावनाओं का अनुभव यदि कोई सहृदय कर सके तो वही विनोद की मनोदशा का अन्दाज भी लगा सकता है। दो तीन दिनों तक उस घर में रहना, जिस घर में मनोरमा हो और मनोरमा बार बार इस चेष्टा में रहे कि विनोद से उसका साक्षात्कार हो, विनोद के लिये अपने ही मृत्यु दण्ड के फैसले पर स्वयम् जज की हैसियत से हस्ताक्षर करने जैसा दंड था।

वह एक दिन चुपचाप उठा और स्टेशन की ओर चला गया।

---

(७)

विनोद घर से लौटा और ठीक इसी तरह लौटा जैसे मर जाने के बाद किसी किसी के प्राण लौट आते हैं। उसने न केवल अपने शरीर से ह बल्कि मन से भी घर का याने गार्हस्थ्य-धर्म का त्याग कर दिया और साथ ही विद्यालय को भी उसने दूर से ही प्रणाम किया। इस तरह धर्म और कर्म दोनों का परित्याग करके वह भावुक युवक मूक, अन्ध और वधिर भविष्य की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगा। उसके हृदय

में नारी-जाति के प्रति पहले भी कोई वैसी श्रद्धा न थी, हाँ, यदि संस्कार वश कुछ आदर था भी तो वह मनोरमा के व्यवहारों से घृणा, अविश्वास, और विरक्ति के रूप में परिणत हो गया। विनोद एक उच्च आदर्शवादी युवक तो स्वभाव से ही था, साथ ही वह प्रत्येक ऐसी भावुकतापूर्ण भावना से दूर रहना चाहता था जो उसके विचारों में उद्वेग पैदा कर देने की क्षमता रखती हो। वह स्नेह, कोमलता, अपनापन आदि को मानवीय दुर्बुद्धि का विकार या इससे भी अधिक कुसंस्कार मानता था। गणित के सिद्धान्तानुसार एक प्रश्न के दो उत्तर कदापि नहीं हो सकते और विनोद गणित के ही नियमों की तरह अपने जीवन को ठीक-ठीक व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। उसने शहर में पहुँचते ही अपने लिए एक डेरे का प्रबन्ध किया जो सस्ते से भी सस्ता हो। पतली और पेचीली गलियों के भीतर जिन गलियों में दोपहर को ही थोड़ी देर के लिए धूप आती थी और बाकी समय वहाँ या तो उषःकाल रहता था या अँधेरी रात रहती थी। एक बहुत बड़े मकान में, जिसमें पचीसो गन्दे और अन्धकारपूर्ण कमरे थे, रङ्ग-बिरंगे परिवारों का वहाँ निवास-स्थान था। आपने कभी देखा होगा फुटपाथ पर बत्तीस तरह के चने बिका करते हैं। कागज के एक टुकड़े पर सभी तरह के चनों को एक में मिलाकर बड़ी सफ़ाई से खोमचा वाला बेचता है।

कन्याकुमारी से हिमालय और अटक से कटक तक इस विशाल भारत का जो विस्मृत भूभाग फैला हुआ है और इस भूभाग को ग्यारह छोटे-बड़े प्रान्तों में बाँट दिया गया है, उस घर में प्रत्येक प्रान्त का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो रहा था। एक कोठरी में यदि पूर्व बंग के मलेरियाक्रांत, अपने पेट में डेढ़ फीट लम्बा प्लीहा लिए कुछ बङ्गाली थे तो दूसरे कोने में

।शावर के कुछ व्यापारी थे जो सात फीट से किसी भी हालत ों कम लम्बे नहीं थे। इस प्रकार अंग, बंग, कलिंग के महा-ानवों के बीच में पहुँचकर विनोद ने यही अनुभव किया कि ाह किसी प्रान्त विशेष में नहीं है बल्कि एक साथ ही समस्त ।श में है। उसने स्वेच्छा से जिस गरीबी का वरण किया ा, वह गरीबी आर्थिक दृष्टि से यद्यपि सुलभ थी किन्तु ानसिक दृष्टि से विनोद के लिए बेहद मँहगी पड़ी।

संध्या समय जब मनोहर अपने मित्र के साथ उसके इस प्रद्भुत निवास-स्थान पर आया तो दुख और घृणा से उसका प्रन्तःकरण भर गया। वह जहाँ पर खड़ा था वहीं पर थूक र बोला—विनोद, सुना तो यह जाता है कि मरने के बाद ापी को नरक भोगना पड़ता है। पर तुमने इस शास्त्रीय वचन ो जीते-जी नरक भोग कर मिथ्या प्रमाणित कर दिया।

अपनी टूटी हुई कुरसी पर मनोहर को साग्रह बैठाता हुआ नोद बोला—सो कैसे ?

मनोहर की झुँझलाहट सीमोलङ्घन कर गयी। उसने उस श्री-ोन छोटी-सी गन्दी कोठरी को अच्छी तरह देखा जिसकी छत ाली थी और दिवारें नमी से भींगी हुईं। सजावट के नाम र एक चौकी और एक ट्रङ्क, खिड़की पर एक सुराही और एक र्श पर बिखरे हुए दुनियाँ भर के अखबार। विनोद ने अपने मत्र को चुप देखकर फिर से पूछा—भैया, चुप क्यों लगा ये ? क्या यह जगह बुरी है ?

मनोहर घृणापूर्ण स्वर में बोला—बुरी क्या, नरक है रक ? मैं अनुमान करता हूँ इस खोभार में कम से कम बीस चीस परिवार तो जरूर ही रहते होंगे। ये सभी एक ही बिल रहने वाले गन्दे छुछुन्दरों की तरह अपने जीवन के शोक-र्ण दिनों को व्यतीत कर रहे हैं। विनोद कुछ उदास-सा होकर

बोला—हाय, तुम नहीं जानते मनोहर, यह घर सच्चा भारतवर्ष है। देखो, सामने की कोठरी में एक लुहार रहता है जिसका दाहिना हाथ आग से झुलसकर काम के लायक नहीं रहा। दो लड़के स्टेशन पर भीख माँगते हैं और स्त्री अपने तीन-तीन छोटे बच्चों को लेकर मातृत्व का पाप भुगत रही है। उस कोने की कोठरी में जो बंगाली है, वह सात बच्चों का पिता है और मुझे विश्वास है कि शायद इसी महीने उसे अपनी भावी आठवीं सन्तान का स्वागत करना पड़े। वेतन है महज साठ रुपये और महीने में कम से कम पाँच रुपए की कुनाइन अवश्य ही वह परिवार खा डालता होगा। सभी बच्चे रोगी, चिड़-चिड़े, जिद्दी, और ऊधमी हैं। बंगाली बाबू जब कभी क्रुद्ध होकर मारपीट शुरू कर देते हैं तो दत्त-यज्ञ का दृश्य उपस्थित हो जाता है। आठ-आठ अभागे बच्चों का रोदन-क्रंदन और जीवन से ऊबी हुई गृहलक्ष्मी का चीत्कार······

मनोहर अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर बोला—सुन लिया और सुनने से भी अधिक समझ लिया। भारत माता के इस सच्चे रूप को प्रणाम करके अब तो तुम्हें इस मातृ-मंदिर का त्याग करना ही पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि तुम्हें इस गन्दी हवा में क्षण भर भी ठहरना पड़े।

इसी समय बाहर आँगन में दो चार व्यक्तियों का सम्मिलित तीव्र कण्ठ-स्वर निनादित हो उठा। एक दूसरे के वंश को मुसलमान, चमार, डोम आदि से सम्बन्धित घोषणा करके जिस अश्राव्य भाषा को वे निःसंकोच भाव से काम में ला रहे थे, उस भाषा को सुनते ही मनोहर सहसा उठकर खड़ा हो गया और बोला—विनोद, इस घर में कलवरिया भी है क्या ?

विनोद कुछ लज्जित होकर बोला—नहीं भाई, कलवरिया

तो नहीं है। पर कलवरिया से सम्बन्ध रखने वालों की यहाँ कमी नहीं है।

मनोहर अत्यधिक विरक्ति के कारण चुप लगा गया। बाहर बरामदे में जो शोर मच रहा था वह हठात् मार-पीट के रूप में जब बदल गया तो मनोहर से बैठा न गया। वह यह देखना चाहता था कि मानव में अभी तक पशुता किस अनुपात में वर्तमान है। रात काफ़ी व्यतीत हो चुकी थी। विनोद ने मनोहर से कहा—मित्र, हम प्रायः भुलावे में ही रहते हैं। पद-मर्यादा के मिथ्याभिमान की उँचाई पर अपना घोंसला बना कर हम उन्हें हीन समझते हैं जो ठोस धरातल पर जीवन यापन कर रहे हैं। तुम संस्कार-वश ऐसे दृश्यों को देखकर सहन नहीं कर सकते। पर मैं अपने जीवन को सच्चाई के निकट तक ले जाना चाहता हूँ। सत्य खूबसूरत नहीं होता, लुभावना नहीं होता। पर उसके परिणाम का ही नाम है—शिवं, सुन्दरं।

मनोहर की घृणा और झुँझलाहट सीमा पार कर चुकी थी। वह रुक्ष स्वर में कहा—तुम्हारा यह सत्यं, शिवं, सुन्दरं जाय जहन्नुम में। अपने बिस्तर वगैरह बाँधकर रखना, मैं सबेरे आऊँगा।

विनोद ने मनोहर के इस सार्थक आग्रह का कोई आशापूर्ण उत्तर नहीं दिया। जब मनोहर अपनी नाक को सुवासित रुमाल से अच्छी तरह बन्द किए बिदा हो गया तो विनोद अपनी चौकी पर लेटकर अतीत के साथ वर्तमातन का गठबन्धन करने का प्रयत्न करने लगा। धीरे-धीरे सारा घर निस्तब्ध हो गया। केवल गली में कूड़ों की ढेर पर रोटी के टुकड़ों के लिए लड़ने-झगड़ने वाले रोगी और गन्दे कुत्ते ही जागृत रह गये।

दूसरे दिन मनोहर आया और उसने विनोद को इस नरकालय से हट जाने के लिए काफी समझाया-बुझाया। पर

विनोद का हठ उत्तरोत्तर कठोर होता गया। अन्त में हताश-सा होकर मनोहर ने कहा—मैं समझता हूँ यह तुम आत्मघात कर रहे हो और मेरी समझ से देश-सेवा का नाम आत्म-घात नहीं है।

विनोद ने कहा—मैं इन अभागों को छोड़कर कहीं भी जाना नहीं चाहता। यह बात नहीं है कि इन्हें ही मेरी जरूरत है, बल्कि सच पूछो तो मुझे ही इनकी आवश्यकता थी, है और सदा रहेगी।

मनोहर का चित्त उदासीनता से भर गया। उसने चलते-चलते कहा—खैर, तुम जीते और मैं हारा। वह समय दूर नहीं है जब तुम्हें अपनी इस भयंकर देश-सेवा का यथोचित पुरस्कार मिल जायगा।

विनोद मुस्कराकर कहने लगा—मिल जायगा ?—मिल चुका खैर, मैं तो कर्मवादी हूँ, भाग्यवादी नहीं।

जब मनोहर विदा हो गया तो विनोद ने मुस्कराकर धीरे से कहा—मनोहर बाबू, अभी तो आप कंगारू के बच्चे की तरह माता के पेट का ही आनन्द ले रहे हैं, आप क्या जानें कि रोटियाँ पकी-पकायी खेतों में फलती हैं या उनके लिए खून-पानी एक करना पड़ता है।

परिस्थिति के अनुकूल अपने को बनाने में विनोद को जितना सहना पड़ा उससे से अधिक ही उसे आत्मानुभूति हुई। उसने स्वेच्छा से जिस गरीबी का वरण किया था, वह गरीबी माँ की तरह उसे प्यारी जान पड़ने लगी। वह प्रयत्न करता कि न केवल उस घर के निवासियों से ही उसकी आत्मीयता स्थापित हो बल्कि वह चाहता था कि उस वर्ग के मानवों की विचार-धारा से वह अवगत हो जाय। विनोद अपने आपको घसीट कर जितना ही अन्धेरी

गुफा में डाल देने का प्रयत्न करता था उतना ही उसे असफल होना पड़ता था। साथ ही एक और कठिनाई उसके सामने स्पष्ट हुई। वह जिस वर्ग को पूरी तरह आशा, भाषाहीन और त्यक्त वर्ग समझता था वह वर्ग अपनी स्थिति से संतुष्ट था। गन्दी कोठरी में रहने वाला बङ्गाली परिवार, दो-दो दिन सपरिवार निरन्न रहने वाला दरिद्र उड़िया और शराब पीकर रात-रात भर गालियाँ बकने वाला लुहार—इनमें से प्रत्येक अपने को बड़ा और दूसरे को नीच और पतित समझता था। विनोद इनसे निकट्ता प्राप्त करने का जितना ही प्रयत्न करता उतना ही उसका यह विश्वास दृढ़ होता जाता कि जब तक मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से पूरी तरह ऊब नहीं उठता तब तक उसका उद्धार असम्भव है।

विनोद ने घर पर पत्र लिखा और यह साफ-साफ उसने लिख दिया कि अब वह अपनी पढ़ाई को जलाञ्जलि दे चुका है। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि परिवार से वह किसी प्रकार की भी सहायता की आशा नहीं रखता और न उसे चाहिए। अब वह अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करेगा।

मनोहर कई बार विनोद से मिला और उसने काफी प्रयत्न किया कि वह अपने को नष्ट न करे पर विधाता के कलम से जो कुछ लिखा जाता है उसे कुल्हाड़े से काट कर नष्ट नहीं किया जा सकता।

*

(८)

मनोहर एक सम्पन्न और वेहद सुखी परिवार का लाड़ला था। विनोद की इस भयङ्कर साधना ने उसे प्रभावित नहीं किया बल्कि उसे मर्माहत कर दिया। एक दिन वह वीणा के सजे सजाए कमरे के कोमल मखमली गद्दी वाली कुर्सी पर आराम से बैठ कर विनोद के सम्बन्ध में कुछ सोचने लगा तो वीणा बोली—मनोहर बाबू, यह उदास रहने का समय तो नहीं। आप क्या सोच रहे हैं ?

क्या उदास होने का या रोने का भी कोई निश्चित समय होता है—मनोहर ने सजग होकर कहा—मिस वीणा, मैं विनोद बाबू के सम्बन्ध में कुछ सोच रहा हुँ। वह तो जीते जी नरक भोग रहा है।

वीणा घबराई-सी बोली—क्या कहा आपने, नरक ! यह कैसे सम्भव हो सकता है मनोहर बाबू। वे देखने में तो सुसंस्कृत जान पड़ते थे।

मनोहर ने दुख भरे स्वर में कहा—वे आज भी तो सुसंस्कृत ही हैं।

इसके बाद उसने विनोद के मानसिक धरातल के बदल जाने की पूरी कहानी वीणा को सुनायी। वीणा भय से कातर होकर सिहर उठी और कहने लगी—मनोहर बाबू, मैं पुष्पा देवी से उनके विषय में बहुत कुछ सुन चुकी हूँ। उनमें जो परिवर्तन आया है वह किसी ऐसी क्रिया की प्रतिक्रिया मात्र है जिसे हम आप तर्क की आँखों से नहीं देख सकते। मैं कह सकती हुँ कि विनोद बाबू तेजस्विता के प्रतीक हैं। उन्हें यदि ठीक रास्ते पर न लाया गया तो परिणाम चिन्तनीय होगा।

उनके भीतर जो मानसिक मन्थन हो रहा है उसकी रोक-थाम होनी चाहिए।

मनोहर मुस्करा कर बोला—तो वीणा देवी, मैं स्त्री-शक्ति का कायल हूँ। अच्छा हो कि दलदल में धँसे हुए इस गजराज का उद्धार आप ही के द्वारा हो।

वीणा की शांत निर्विकार आँखों में लज्जा की एक लहर उठकर विलीन हो गयी। दरवाजे के भारी परदे को हटा कर मिस्टर प्रमथ चौधरी ने भीतर प्रवेश किया। चौधरी एक ऐसे बंगाली वकील थे जिनकी तर्क सम्बन्धी क्षमता का अधिकांश भाग अपनी तीसरी नवयुवती, सुन्दरी और रहस्यमयी पत्नी को समझने और समझाने में ही खप जाता था। उनके कृपण और सूदखोर पिता ने सूखी मछली और नारियल के व्यापार को पाट की दलाली तक पहुँचाकर अपने नालायक वकील पुत्र के लिए जितना कुछ बैंकों में छोड़ दिया था वह चौधरी के जीवन भर के लिए पर्याप्त था। दो-दो बार पत्नी-वियोग का सुख उन्होंने प्राप्त किया। पर अपनी ढलती उम्र में एक नव्य सभ्यतामयी छोकरी का पाणि-पीड़न करके चौधरी ने अपने आपको कहीं का भी न रहने दिया। इस बार उन्हें यह विश्वास हो गया कि पूर्व की तरह पुरानी पत्नी से छुटकारा पाकर नयी नवेली का भोला-भाला मुँह देखना उनके लिए असम्भव है। बल्कि ठीक इसके विपरीत उनकी नवजवान बहू रानी को ही पति-वियोग का तृप्तिपूर्ण आनन्द प्राप्त होने की अधिक सम्भावना है। ज्ञान-चक्षु से इस परम और चरम सत्य को देख लेने से चौधरी का हृदय प्रायः निराशा से विकल हो उठा करता था और जब-जब विकलता विशेष कष्टदायक हो जाती तो वे वीणा की शरण में आ जाते थे। वीणा को देख लेने के बाद उन्हें ऐसा लगता था कि कहीं उनको वह तृतीया पत्नी

हैजा या किसी बिना अधिक खर्च कराये अनायास मार डालने वाली दयापूर्ण बीमारी से उनका साथ छोड़ दे तो वे वीणा जैसी सर्व गुणसम्पन्न रमणी के द्वारा एक बार अपने जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न अवश्य करें। वीणा जब-जब चाचा जी कहकर पुकारती, उन्हें बहुत ही बुरा मालूम होता। वे प्रायः बोल उठते—मिस वीणा, चाचा, मामा, मौसा आदि सम्बोधन तो मध्य-युग के हैं। तुम्हारी जैसी उच्च-शिक्षिता लड़की के मुँह से यह गँवारू सम्बोधन अच्छा नहीं लगता।

उस दिन भी मि० चौधरी को देखते ही वीणा बोली—चाचा जी, तुम ? इतनी रात को ? बाहर तो काफी सर्दी पड़ रही होगी ?

हुँकार करके मि० चौधरी ने एक बार मनोहर की ओर देखा क्योंकि जब वे वीणा के पास आते थे तो उसके निकट उसकी छाया को देखकर भी मन ही मन भुँझला उठते थे। यद्यपि वीणा से और उनकी उम्र से प्रायः ३० लम्बे-लम्बे वर्षों का अन्तर था। फिर भी वे मन ही मन यही चाहते थे कि वीणा उन्हें अपने हमजोलियों में समझे। उन्हें नवयुवकों की तरह हँसना आता था, यद्यपि सामने के दो दाँत टूट चुके थे। उन्हें नवयुवकों की तरह तन कर बैठना आता था यद्यपि कमर के दर्द से जाड़े के दिनों में बेतरह विकल रहते थे। उन्हें नवयुवकों की तरह चंचलता करने का ज्ञान था, यद्यपि उनका शरीर ढीला, मोटा और भद्दा होकर नमक की बेढंगी बोरी की तरह हो गया था।

मनोहर की ओर अपनी पीली और गोल-गोल आँखों से देखते हुए चौधरी ने वीणा से कहा—वीणा देवी, मैं समझता हूँ कि इस वर्ष सर्दी बहुत तेज पड़ेगी और अधिक रात तक इधर-उधर घूमना निरापद नहीं है। निमोनिया, ब्रोंकाइटिस...।

मनोहर ने कहा—धन्यवाद चौधरी बाबू। आपने सर्दी की भयानकता की याद दिला कर मुझे सचेत कर दिया। अब मैं चला।

चौधरी कुछ लज्जित-से हो गए और कहने लगे—मैं बाहर से आ रहा हूँ। ऐसी धुली सर्दी पड़ रही है कि क्या बतलाऊँ। जान पड़ता है कि सायबेरिया की ठंडी हवा अब तुम्हारे प्रान्त में भी बहा करेगी।

मनोहर चुपचाप उठा और वीणा से कहा—विनोद के उद्धार का अब सारा दायित्व आप पर ही है। मैं इस भार से मुक्त हुआ। जैसा उचित समझिये, व्यवस्था कीजिये।

वीणा चौधरी के बेहूदेपन से मन ही मन खीज उठी थी। उसने खिन्न स्वर में कहा—देखिए, प्रयत्न करूँगी।

अच्छा हो कि कल आप दोपहर को दर्शन दें। कल रवि-वार है और आपका कॉलेज भी बन्द रहेगा।

प्रयत्न करूँगा—कह कर जब मनोहर चला गया और उसके जूते की आवाज क्रमशः क्षीण होती-होती जब शून्य में विलीन हो गयी तो अच्छी तरह हाथ-पाँव फैलाकर चौधरी इस तरह कुर्सी पर बैठ गये कि अब भोर तक हिलने का नाम भी न लेंगे। उनका इस तरह निश्चिन्ततापूर्वक बैठना वीणा को बहुत बुरा मालूम हुआ। अत्यधिक झुँझलाकर वह बोली—दूसरों के लिए तो आपके हृदय में बहुत बड़ी वेदना है चाचा, पर अपने प्रति भी तो कुछ दया के भाव रक्खा कीजिए। जान है तो जहान भी है।

अपनी तंदुली खोपड़ी पर सिगरेट की गंध से भरे हुए हाथ फेर कर चौधरी ने साश्चर्य पूछा—सो कैसे ?

वीणा ने अपने सूत्र की व्याख्या इस तरह की—मनोहर बाबू कॉलेज में पढ़ते हैं, हट्टे-कट्टे नवयुवक हैं। उन्हें तो

आपने साइबेरिया की हवा, धुली हुई सर्दी, निमोनिया, ब्रोनकाइटिस, प्लुरेसी, गठिया बात आदि-आदि रोगों-उपरोगों का भय दिखलाकर अपनी गम्भीर आत्मीयता का परिचय दिया, किन्तु स्वयं बृद्ध और निर्बल होते हुए भी इतनी रात तक घर से बाहर रहने का खतरा कैसे उठा लिया, यही बात मेरी समझ में नहीं आई।

आपने देखा होगा रात को हलवाई की दूकान जब बन्द हो जाती है तो गरम चूल्हे के नीचे जो राख की ढेर लगी होती है उस पर शीताक्रांत कुत्ते सुख की नींद लेते हैं। यदि निद्रानन्द विभोर उस निरीह पशु को कोई एक लाठी मार दे तो उस समय उसकी जैसी विकलतापूर्ण और कातर अवस्था होगी, ठीक यही दशा हुई मि० चौधरी की नवयुवती वीणा के मुँह से 'बृद्ध' शब्द सुनकर।

खाली छुतहे घड़े की तरह मुँह फारकर चौधरी एक प्रकार आर्त्त स्वर में चीख़ उठे—मिस वीणा, तुम क्या कह रही हो? क्या मैं उस हिन्दुस्तानी छोकरे से भी गया बीता हूँ। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरे पिता एक अच्छे खासे पहलवान थे। वे एक साँस में दो सेर पक्का भैंस का दूध पी जाते थे।

वीणा मुस्कराकर बोली—चौधरी चाचा, यहाँ आपके पितृदेव की नहीं, आपकी चर्चा हो रही है।

चौधरी अपनी इस बेहूदी गलती को समझकर विशेष उद्विग्न हो उठे और हाथ की जलती हुई सिगरेट को कपड़े से ढँकी हुई मेज पर रखकर कहा—अरे नहीं, मैं कुछ दूसरी ही बात कहने जा रहा था। तुमने—ठीक है।

वीणा ने धीरे से उस सिगरेट को उठाकर फूलदान में डाल दिया। यह मिस्टर चौधरी के लिए लज्जा का दूसरा प्रहार था। वे इतना घबरा गए थे कि वीणा के इस कार्य का विरोध करते

उनसे न बन पड़ा। विकल चौधरी के अस्तव्यस्त चेहरे को देखकर वीणा के खिन्न हृदय में भी दया का संचार हो गया। वह स्नेह-पूरित कण्ठ से बोली—चाचा, मैं कल एक ऐसे सज्जन के निकट जाऊँगी जिसने स्वेच्छा से गरीबी का वरण किया है।

मि० चौधरी ने जल्दी-जल्दी कहा—वह कौन है वीणा ?

वीणा ने आत्म-तृप्ति के साथ कहा—वे हैं मि० विनोद। इसी प्रान्त के एक बड़े वकील के पुत्र हैं, साथ ही विद्वान और कट्टर आदर्शवादी भी हैं।

तिक्त मुँह बनाकर चौधरी ने कहा—इसी तरफ के, यानी हिन्दुस्तानी, वीणा, मैं बहुत बार तुम्हें कह चुका हूँ, इन हिन्दुस्तानियों से तुम दूर ही रहा करो।

वीणा धीरे से बोली—मैं बहुत प्रयत्न करती हूँ। पर···

चौधरी अपने स्वर में अधिकार और बड़प्पन भर कर बोले—तुम्हारे इस "पर" के मानी क्या हैं यह मैं आज तक नहीं समझ सका। ये हिन्दुस्तानी छोकरे प्रायः आतङ्कवादी और असंस्कृत होते हैं।

वीणा कहने लगी—चाचा, जब तुम्हें मालूम है कि हिन्दुस्तानियों का साथ नहीं करना चाहिए तो तुम देश क्यों नहीं लौट जाते ? जगह जमीदारी खरीद कर इन असंस्कृतों के बीच में बसने की कुचेष्टा तुम्हें नहीं करनी चाहिए। आँख से देख कर मक्खी निगलने वाले को मैं क्या कहूँ ? तुम वकील हो, कानून-सम्मत विशेषण याद हो तो बतलाओ जिससे मेरा काम भी न चलने पावे।

चपत खाए हुए बन्दर की तरह अचानक भड़भड़ा कर चौधरी इधर-उधर देखने लगे। वीणा ने जो कुछ कहा था वह एक सीधा प्रहार था।

मैंने धूप में बाल नहीं पकाए—चौधरी अचानक बोल उठे। किन्तु अपने बाल पकने की बात को जल्दी में स्वीकार करने से उन्हें बहुत मलाल हुआ।

वीणा बोली—चाचा, प्रकृति और पुरुष में जो दंगाफसाद विज्ञान के अभ्युदय के साथ ही आरम्भ हो गया है उसका अन्त अब नजर नहीं आता। प्रकृति बाल पका डालती है पर पुरुष वैज्ञानिक उपायों से उन्हें फर काले कर डालता है। प्रकृति के ठोकरों से दाँत टूट जाते हैं, पर सड़कों पर बड़े-बड़े आकर्षक साइनबोर्ड लगाए जो (Dentist) नजर आते हैं वे……।

चौधरी ने कहा—इन बातों को यहीं समाप्त करो वीणा। तुमने तो गद्य-काव्य ही आरम्भ कर दिया।

घड़ी ने नौ बजने की सूचना दी और मिस्टर चौधरी को खिसकने के लिए बाध्य होना पड़ा। यदि घड़ी अपनी काली-काली दो उँगलियों से उन्हें बाहर निकलने का आदेश न देती तो वे मधुपान-लुब्ध मधुकर की तरह जहाँ की तहाँ जमे रहते। वे इस तरह कुर्सी से उठे मानो दुनिया से उठे चले जा रहे हों। उन्होंने जाते-जाते क्रोध भरी जलती हुई दृष्टि से एक बार घड़ी की ओर देखा। उन्हें शायद यह भ्रम हो कि बिगड़ी हुई घड़ी आठ के बदले में नौ तो नहीं बजा देती। उसके बाद उन्होंने अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि डाली और दोनों घड़ियों की मन ही मन तुलना करके वीणा से कहा—तुम्हारी घड़ी पन्द्रह मिनट फास्ट है।

वीणा ने मुस्करा कर कहा—तो पन्द्रह मिनट और ठहर जाइए चाचा। घर ही तो जाना है। जल्दी क्या पड़ी है। मुझे विश्वास है कि मेरी चाची निश्चय ही सिनेमा देखने गयी

होंगी। खाली घर में जाकर निर्जनता से हाथापाई करना मेरी समझ से भयङ्कर मानसिक दण्ड है।

पके हुए फोड़े में सूई चुभोने जैसा कष्ट मि० चौधरी को हुआ। वे अपनी सर्वगुण सम्पन्ना नयी नवेली को भूल जाने ही के लिए वीणा के निकट आते थे। पर वीणा ने विस्मृति के कैदखाने से स्मृति की शेरनी को निकालकर अभागे चौधरी के लिए संकट ही उपस्थित कर दिया।

चौधरी जब कमरे से बाहर होने लगे तो बीणा ने कहा—"चाचा, याद कर लेना कल ठीक दो बजे हम विनोद बाबू के यहाँ जायँगे।"

चौधरी लौटकर खड़े हो गये और क्षण भर तक वीणा के यौवन से भरे हुए मुख की ओर अपलक दृष्टि से देखकर कहा—"मैं तो कहूँगा कि इस झगड़े में तुम मत पड़ो। जब तुम मानती ही नहीं तो मैं आऊँगा।

---

(६)

विनोद के जाने के बाद मनोरमा को ऐसा लगा जैसे उसे किसी भयंकर हत्या का महा पाप लग गया हो किन्तु वह कठोर निचश्य वाली एक रमणी थी जिसके लिए कुछ भी कर बैठना असम्भव न था। कुछ दिनों तक तो वह भीतर ही भीतर रही पर ज्यों-ज्यों समय समाप्त होता गया, उसकी मानसिक ग्लानि प्रतिहिंसा की चिता की तरह धू-धू करके जल उठी। उसने अपने भीतर के समस्त अवसाद को, मलाल को एक बारगी ही झाड़-पोंछ कर कूड़े की तरह विस्मृति के अतल गर्त में फेंक दिया। उसकी सास, कमला, ने धीरे-धीरे असहयोग-सा ही कर लिया था। पहले तो मनोरमा को अपनी सास का यह

तिरस्कारपूर्ण दुराव खलता था, पर उसने अपने को सब कुछ सहने के लिये दृढ़तापूर्वक तैयार कर लिया। उसका धर्म भीरु, भक्त और कोमल वृत्तियों वाला पति—प्रमोद—ने भी जो भाव धारण किया था, उससे नीरव पर गहरी विरक्ति ही प्रकट होती थी। किसी भी स्त्री के लिए, यदि उसके भीतर कोमल स्त्रीत्व वर्तमान हो तो, अपने पति के द्वारा बिना किसी हलचल के या रोष प्रकाश के तिरस्कृत या उपेक्षित होना मौत से भी भयंकर सजा हो सकती है। यह तो जीते-जी दलदल में गाड़ देने जैसी अनिर्वचनीय पीड़ा है। बिना किसी प्रकार का विरोध किए या क्रोध प्रकट किए केवल नीरव चुप्पी और तटस्थता के द्वारा जो दण्ड दिया जाता है उसकी तुलना में बर्बर युग के महाभीषण दण्ड भी नहीं ठहर सकते। किन्तु मनोरमा का ध्यान सब कुछ समझ बूझकर भी इस ओर न था। वह जानती थी कि वह किस स्थिति में पहुँच रही है। घर की दाइयों से लेकर सास और पति की नजरों से भी मनोरमा ठीक इसी तरह उतर गयी जैसे किसी मोती पर का पानी उतर जाता है। पारिवारिक सम्मान के बाजार में यद्यपि मनोरमा का मूल्य बेहद नीचे गिर गया था, फिर भी मनोरमा के भीतर यह ज्वलन्त आत्म-संतोष था कि इतना कुछ उसे अपने विनोद के लिए ही सहना पड़ा है। यदि विनोद के लिए उसे इन यातनाओं से भी अधिक और भयंकर यातना सहनी पड़ती तो उसे चरम आत्म-तृप्ति होती।

जब कभी भूले-भटके-से उसके पतिदेव उसके निकट तक पहुँच जाते तो मनोरमा अपने भीतर क्षण भर के लिए मर्मान्तक लज्जा का अनुभव करती और उसे ऐसा लगता कि उसने अपने ही हाथों से अपने समस्त 'स्व' की निष्ठुर हत्या कर डाली है जैसा कि उसके लिए उचित न था। प्रमोद को देखते

ही मनोरमा की आँखों में लज्जा और मनस्ताप की धुँधली छाया झलक जाती और मनोरमा की व्याकुल मनोदशा का भान होते ही प्रमोद का हृदय सकरुण दया से ओतप्रोत हो जाता। प्रमोद यह समझता था कि उसकी छाया मात्र से ही मनोरमा का हृदय मनस्ताप-जनित पीड़ा से विकल हो उठता है। इसीलिए वह कोमल-हृदय युवक अपनी पत्नी से इच्छा न रहते हुए भी दूर ही रहना चाहता था। वह अपनी अपराधिनी पत्नी की दयनीय मनोदशा को अच्छी तरह समझता था और उसका सहज दयापूर्ण हृदय यह आदेश नहीं देता था कि उस कातर-प्राण को बार-बार मानसिक दण्ड दिया जाय।

हरनन्दन बाबू की नजरों में भी परिवार की नजरों से प्रत्येक छोटी-बड़ी बात गुजरी थी। उनकी दृष्टि बहुत ही पैनी थी। उन्होंने अपने फूल-जैसी गृहस्थी में विकार के कीटों को घुसते देखा और देखा कि उस फूल की एक-एक पंखुड़ी धीरे-धीरे कुतरी जा रही है। वे अनन्योपाय थे। उनके मान नेत्रों के सामने उनके परिवार का भविष्य बार-बार स्पष्ट होने लगा और वे भीतर ही भीतर मोम के प्रदीप की तरह धीरे-धीरे जल कर निःशेष होने लगे।

अपने आहत पुत्र प्रमोद की ओर उनका सकरुण मोह बेतरह बढ़ गया क्योंकि वे उसकी कोई ऐसी सहायता नहीं कर सकते थे जिससे उसके हृदय के न दिखलाई पड़ने वाले शत-शत जख्मों की जलन मिटती। हरिनन्दन बाबू ने अपनी मनोवेदनाओं से त्राण पाने के लिए अपने आपको भजन, कीर्त्तन, व्रत-उपवास और पूजा में विशेष रूप से लीन कर देना चाहा किन्तु उनके हृदय में जो अनगिनत छोटे-छोटे छिद्र हो गए थे उन छिद्रों से होकर दुख की ज्वाला और उसकी चिनगारियाँ फूट पड़ती थीं। यही दशा प्रमोद की भी थी। कमला, जिसने बहुत

दिनों से अपने होठों को सी रक्खे थे, अपने पति और पुत्र का साथ उनके भजन-पूजन में विशेष अभिरुचि से देने लगी। हरिनन्दन बाबू अपनी साध्वी पत्नी के निकट जब कभी जाते तो इस भय से उनका हृदय धड़कता रहता कि कहीं मनोरमा या विनोद की चर्चा या उनका नाम कहीं कमला के मुँह से न निकल पड़े। जिस दिन विनोद का पत्र आया, हरिनन्दन बाबू का हृदय इतना दुःख-कातर और भय-विह्वल हो उठा कि उन्होंने उसकी चिट्ठी को धीरे से उठाकर बक्स में डाल दिया। न उनसे लिफाफा खोल कर पढ़ा गया और न फाड़ कर फेंका गया। प्रमोद ने भी उस लिफाफे को देखा और अपने भाई के अक्षरों को पहचाना। उसकी आँखों के सामने क्षण भर में अतीत के सारे चित्र नाच गए और एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर वह मन्दिर की ओर चला गया जहाँ भगवान राधा-कृष्ण की शान्ति प्रदायिनी जोड़ी सिंहासन पर सुशोभित थी। प्रमोद से आँखें भर कर अपने अनुज के अक्षर भी नहीं देखे जा सके।

× × ×

सर्दी की आधी रात। पूस समाप्त हो रहा था। 'वन्दे-मातरम्' गान में 'मलयज शीतलाम्' जो पद आया है उस पद का साकार रूप पूस की आधी रात को खुले खेतों और नदी के किनारे दिखलाई पड़ता है। मध्य गगन में चन्द्रमा चमक रहा था और उसके निकट एक बड़ा-सा तारा भी झिलमिला रहा था। मनोरमा के मन में विश्राम न था, शान्ति न थी और आँखों में नींद का अभाव था। वह अपने कमरे में कभी उठती, कभी बैठती और कभी टहलती। उसके दिमाग में मानों गरम तेल खौल रहा हो। रह-रह कर उसका गोरा और चिकना ललाट उत्तप्त हो उठता और आँखों से

चिनगारियाँ-सी फूटने लगतीं, साँस जोर-जोर से चलने लगती और हृदय धड़कने लगता। उसने एक ग्लास पानी एक साँस में ही पी डाला और खिड़की खोलकर खड़ी हो गयी। ऊपर प्रशान्त नील गगन और नीचे चाँदनी में डूबा हुआ निद्रा-विभोर भूतल। दूर-दूर तक फैले हुए जनहीन खेत और खेतों के पार काली उदास वन-रेखा। दूर-दूर से शीत-कातर सियारों के रोने की आवाज उस विभावरी की निर्जनता को और गंभीर बना रही थी। खुली हुई खिड़की से हवा के ठंढे झोंके मनोरमा के उत्तप्त ललाट को मानों शीतल चुम्बन प्रदान कर रहे थे। उसे पूस की ठंढी हवा वसन्त की हवा-सी सुखद जान पड़ती थी। एक-टक रात्रि की निर्जनता को देखती हुई वह रहस्यमयी तरुणी ऐसी जान पड़ती थी मानों विभावरी की शोभामयी नीरवता में अपने को विलीन कर देना चाहती हो।

मनोरमा खिड़की के सामने से लौट कर खाट पर बैठ गयी और फिर खाट से उठकर कोने में जलने वाली लालटेन को उसने बुझा दिया। लालटेन के बुझते ही वह छोटा-सा कमरा खिड़कियों की राह से आने वाली शशि-सम्भवा विभा के कोमल प्रकाश से भर गया। मनोरमा फिर खाट पर सब कुछ हारे हुए जुआरी की तरह लेट गयी। वह मानों अपने यात्रा-पथ के लिए स्वर्ग से आने वाले प्रकाश को ही पसन्द करने लगी हो। इसीलिए उसने इस भौतिक जगत की लालटेन के प्रकाश को अपनी आँखों से दूर कर दिया।

धीरे-धीरे रात्रि निस्तब्ध भाव से व्यतीत होने लगी और चन्द्रमा सुदूर की पहाड़ियों की चोटी पर इस तरह दिखलाई पड़ने लगा मानों विदा होने के पहले इस रहस्यमयी वसुधा को वह एक बार आँखें भरकर देख रहा हो।

मनोरमा को न जाने कब नींद आ गयी। उसने स्वप्न में

देखा, वह अपनी ही लाश को चिता पर रख कर फूँक रही है। वह घबराकर जब जाग उठी तो उसे ज्ञात हुआ कि उसका तकिया उसकी आँखों से निकलने वाले आँसुओं से भींग गया है। दिन काफी चढ़ गया था। पर मनोरमा को किसी ने भी नहीं जगाया। यदि वह पहले इतना असमय तक सोती तो अपनी सास की डाँट-फटकार उसे सारा-दिन सुननी पड़ती। मनोरमा के भीतर से एक आह निकली जो कण्ठ तक ही जाकर रुक गयी।

---

(१०)

नमक का पुतला समुद्र की थाह लेने के पहले इस ख्याल में था कि वह महोदधि की गहराई का पता लगाने में जरूर सफलता प्राप्त करेगा, पर नोने जल में उतरते ही उसे अपने अस्तित्व से ही हाथ धो देना पड़ा। अनन्त सागर में मिलकर वह भी अनन्त बन बैठा। ठीक इसी तरह देश की अतल स्पर्शिणी गरीबी की थाह लेने जब विनोद गया तो उसे यह पता ही न चला कि कब और किस क्षण उसने अपना अस्तित्व गँवा डाला। वह चाहता था सेवक बनना, किन्तु जब अन-जानते ही स्वयं सेव्य के रूप में परिणत हो गया तो उसकी भवितव्यता खिलखिला कर हँस पड़ी। खुलासा यह है कि जिन अभागों की मण्डली में विनोद ने अपना नीड़ बनाया था वह मण्डली उसे साफ निगल गयी। वह अपने अस्तित्व को पृथक न रख सका। अञ्जलिगत जल की तरह जब उसकी थोड़ी-सी पूँजी भी समाप्त हो गयी तो उसने मनोहर से एक दिन कुछ कहने का निश्चय किया, पर उसके आत्माभिमान

ने कुछ कहने न दिया। गरीब यदि आत्माभिमानी हो तो उसकी मौत ही समझें।

सर्दी के दिनों में विनोद ने अपने कई फालतू कोट और दूसरे कपड़े उन गरीबों में बाँट दिए थे जो उस घर में रहते थे, किन्तु तत्काल ही उसे उस समय अपनी इस गलत उदारता का पता चल गया, उसे यह मालूम हो गया कि उसके कोट कम्बल बाकायदा कलवरिया में चले गये। जिन्हें हद दर्जे का गरीब समझ कर उसने अपने संकट की उपेक्षा करके सहायता पहुँचाई थी, वे दुर्भाग्य के सताये हुए गरीब न थे, बल्कि अपनी आदत से गरीब थे। उनमें शराब और जुए की आदत थी और वे अपनी गन्दी आदतों के साँचे में अन्तिम रूप से ढल चुके थे। जिस लुहार को विनोद ने अपना कीमती मोटा ऊनी कोट दिया था वह एक मेहनती और सुलझा हुआ कारीगर था। जिस पञ्जाबी को विनोद ने अपना दामी कम्बल दिया था वह भी अपने फन का उस्ताद था, पर शराब और जुए ने उनकी हथेलियों में बड़े-बड़े छेद बना डाले थे। उन छेदों से उनकी कमाई के पैसे नीचे गिरकर मिट्टी में मिल जाते थे।

एक दिन विनोद ने जाड़े से ठिठुरने वाले लुहार से पूछा—क्यों जी, तुम फिर खाँस रहे हो। तुगने कोट को कहाँ रक्खा? उसे पहनते क्यों नही? इस पतले कुर्ते से सर्दी कैसे काटोगे!

अपने गन्दे और पीले दाँत खिसोड़ कर लुहार ने उत्तर दिया—बाबू जी, क्या बतलाऊँ। मैं एक दिन दूकान में ही कोट भूल आया और किसी साले ने—अरी ओ रमुआ की माँ, देख तो बिल्ली रोटी उठाए भागी जा रही है।

'रमुआ की मैया' को लक्ष्य करके भद्दी-भद्दी गालियाँ बकता

हुआ वह चालाक लुहार अपनी कोठरी की ओर दौड़ गया। और विनोद हक्का-बक्का-सा खड़ा रह गया। उसे उसके भावुक हृदय को यह जानकर बड़ी वेदना हुई कि वह लुहार अपने एक पाप को छिपाने के लिए निर्लज्जतापूर्वक एक दूसरा पाप करने में जरा भी कुण्ठित नहीं हुआ याने चेहरे पर के पुते हुए तारकोल छुड़ाने का प्रयत्न उसने और तारकोल पोत कर किया। विनोद जब अपनी कोठरी की ओर मुड़ा तो उसने देखा कि वीणा, पुष्पा, मनोहर एक किसी अपरिचित भद्र पुरुष के साथ आ रहे हैं जिसे उसने पहले कभी न देखा था। वह अपरिचित भद्र पुरुष थे मि० चौधरी, जो नाना भाँति के गरम कपड़ों में भली-भाँति लिपटे हुए और बड़ा-सा चुरुट मुँह में लगाये हुए थे।

एक बार विनोद ने कीमती कपड़ों वाले आगत महानुभावों की ओर देखा और दूसरी बार अपनी छोटी सी सील से भरी कोठरी की ओर, जिसमें एक चारपाई, एक स्टूल और केवल एक ही टूटी हुई कुर्सी थी। विनोद के अन्तस्तल की गहराई में वेदना की जो क्षीण झंकृति पैदा हुई वह उसके मन में थोड़ी सी उदासी की लहर पैदा करके विलीन हो गयी। विनोद ने अपनी इस निर्बलता को मन ही मन धिक्कारा और फिर अपने आप को पूर्ववत कठोर बना लिया। अपने ऊपर जान बूझकर कठोर नियंत्रण रखने के कारण विनोद के जिस चेहरे से सदा एक झुँझलाहटपूर्ण आत्मरति के भाव झलकते रहते थे उसी चेहरे पर मुस्कान की एक हल्की सी लहर इधर से आयी और उधर चली गई।

मनोहर ने कहा—विनोद, यह देखो मिस वीणा और पुष्पा देवी तुमसे साक्षात्कार करने आयी हैं, साथ ही आए हैं इस मशीनरी के फोरमैन मि० चौधरी ऐडवोकेट।

विनोद ने देखा कि अपनी बड़ी-सी और फूली हुई नाक को रूमाल से बन्द किए मि० चौधरी इस तरह सब के पीछे खड़े हैं मानों नाक की राह से उनके प्राण ही निकलने वाले हों। विनोद ने सहज स्वाभाविक कण्ठ से कहा—मैं किन साधनों के द्वारा आप महानुभावों का स्वागत करूँ। महाभारत में धर्मराज के नरक-दर्शन करने का वर्णन मैंने कभी पढ़ा था। किन्तु आप लोगों ने इस नरक में पधार कर हजारों साल की उस पुरानी कहानी को प्रत्यक्ष रूप दे डाला है।

विनोद के कमरे में पहुँच कर मि० चौधरी ने चारों ओर अपनी घृणापूर्ण दृष्टि फेरी और पुष्पा ने आह भरकर उस कोठरी को देखा। वीणा ने साश्चर्य दृष्टि से खाट, मेज और कुर्सी को देखकर कहा—विनोद बाबू, मैं नहीं समझती कि आप कर क्या रहे हैं ? उचित तो यह था कि पहले मैं आपसे कुशल समाचार पूछती किन्तु यह गली, यह अतीत का जीर्ण साक्षी घर और उसमें का यह दयनीय कमरा तथा कमरे के भीतर के सामान चीख-चीख कर आपकी कुशलता सुना रहे हैं। अब कुछ पूछने की हाजत नहीं रह गयी।

पुष्पा खिड़की के पास गली की ओर मुँह करके अविचल भाव से खड़ी हो गयी अपने उमड़ने वाले आँसुओं को देखने वालों की आँखों से छिपाने के लिए। विनोद ने स्नेह सिक्त स्वर में कहा—वीणा देवी, मिट्टी को कोई अधिकार नहीं है कि वह कुम्हार से पूछे कि तुम मुझे भिन्न-भिन्न बर्तनों और खिलौनों के रूप में क्यों गढ़ते हो और न कुम्हार को खरीदने वालों से यह पूछने का अधिकार है कि तुम मेरे गढ़े हुए बर्तनों और खिलौनों को तोड़-फोड़कर घर के कूड़ों के साथ क्यों फेंक देते हो। जो होना था, हो चुका और जो होने वाला है, वह भी होकर ही रहेगा।

मि० चौधरी, जो अभी तक अपनी नाक को कसकर बन्द किए हुए थे, बोल उठे—विनोद बाबू; मुझ अपरिचित को तो आप क्षमा कीजिएगा। यहाँ की गन्दगी आप कैसे सहते हैं।

मि० चौधरी का यह बेहूदा प्रश्न विनोद को छोड़कर प्रत्येक को बुरा जान पड़ा। विनोद ने धीरे से उत्तर दिया—महाशय, आप इस प्रत्यक्ष गन्दगी से अधीर हो रहे हैं, किन्तु मैं तो उस अप्रत्यक्ष गन्दगी से इसे अच्छा ही स्वीकार करता हूँ जिसका यदि मैं विश्लेषण करूँ तो आप मुझ पर सदा के लिए नाराज हो जाएँगे। यदि ऐसी बात न होती तो मैं यहाँ आता ही क्यों ?

इस करारी चपत ने मि० चौधरी की गँजी खोपड़ी में झन-झनाहट पैदा कर दी। वह अपने स्वभावानुसार कुछ भद्दा तर्क पेश करना ही चाहते थे कि बीच में ही वीणा कह उठी—विनोद बाबू, मैं आपसे प्रार्थना करूँगी कि अपनी इस तपस्या को यहीं पर समाप्त कर दीजिए। मैंने सुना है कि आप इस मुहल्ले के आवारा लड़कों को एकत्रित करके उन्हें पढ़ाते हैं, रोगियों की सेवा करते हैं, और स्वभाव से ही गंदे रहनेवाले परिवारों को अच्छी रहन-सहन सिखलाते हैं। मैं आपकी प्रत्येक बात का हृदय से समर्थन करती हूँ, पर मैं यह नहीं पसन्द करती कि आप ऐसे अस्वास्थ्यकर स्थान में रह कर और अपने रहन-सहन के धरातल को इतना नीचे उतारकर अपने आप को अपने ही पैरों से रौंद डालें।

विनोद ने दीर्घ श्वास त्याग कर कहा—इस सद्भावना के लिए धन्यवाद।

मि० चौधरी बार-बार अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि डालते हुए मन ही मन ऊब रहे थे। उन्होंने बातचीत के सिल-सिले को शीघ्र ही समाप्त करने की गरज से कहा—मिस वीणा,

इन्हें भी कुछ सोचने का अवसर दो। तुमने तो एक बार ही 'मार्शल' ला, की घोषणा कर दी।

इतना कहकर मि० चौधरी धीरे से उठकर खड़े हो गये और वीणा की ओर कातर दृष्टि से देखने लगे जो अविचलित भाव से बैठी थी। मनोहर जो अब तक चुप था, कहा— वीणा देवी, मुझे विश्वास है—

वीणा ने कहा—कि अवसर आने पर पत्थर भी पसीज उठता है।

जब यह दल विदा होने की चेष्टा करने लगा तो पुष्पा खिड़की से हटकर विनोद के सामने आयी और मनोहर को लक्ष्य करके बोली—मनोहर बाबू, मैं कहती हूँ—मेरा विनय है, आप लोग इनको अपने हाल पर छोड़ दीजिए। मैं जानती हूँ, मुझे विश्वास है, जैसे कोई मेरे कानों में कह रहा है कि इन्हें शान्ति की आवश्यकता है। यदि हम इनके शुभाकांक्षी हैं तो अपने ढंग पर शान्ति लाभ करने में हम इनके साधक बनें न कि बाधक। चलो बहन वीणा, अधिक समय हो गया।

विनोद ने किसी विशेष आडम्बर के अपने हितैषियों को विदा करके आराम का अनुभव किया। उसने अघाकर साँस ली। वह नहीं चाहता था कि कोई बार-बार आकर उसे कोई छेड़ा करे। वह प्रयत्न करके अपने मन को शान्त बनाता था, अपनी ऊधम मचानेवाली वृत्तियों को स्थिर करता था, पर जब जब मनोहर आता उसके सारे प्रयत्नों पर पानी फेर कर चला जाता। विनोद बहुत ही झुँझलाता पर मुँह खोलकर आनेवालों को आने से मना करने का साहस उसमें न था। वह अपनी इस कमजोरी पर कुढ़ता था। उस दिन उसने तीन कार्ड निकाले और उन पर अपने मनोभाव बहुत ही विनीत भाषा में लिख कर उसे डाक में डालने चला। एक कार्ड था मनोहर के

नाम से, दूसरा वीणा और तीसरा पुष्पा के लिये। डाक में छोड़ते समय मनोहर और वीणा के कार्ड को तो उसने चुपचाप लेटरवक्स में डाल दिया पर पुष्पा के कार्ड को वह पोस्ट न कर सका। उसने उसे कुछ सोचकर अपनी जेब में ही रहने दिया।

इतना कर लेने के बाद विनोद जब अपने डेरे पर लौटा तो उसे एक लिफाफा मिला। अक्षरों से पता चला कि वह लिफाफा 'मनोरमा' का भेजा हुआ है। विनोद का हृदय हठात् धड़क उठा—उसका सारा शरीर झनझना उठा। वह गोद में लिफाफा रक्खे खाट पर बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा।

मनोरमा, वह नवयुवती मनोरमा जिसके हृदय के उतार-चढ़ाव को, जिसकी उद्दाम और विह्वल भावनाओं को समझना किसी भी मनोवैज्ञानिक के लिए सम्भव न था, उस मनोरमा ने विनोद को क्या लिखा था, यह बतलाना सहज नहीं है। जिस तरह पूर्व जन्म-कृत पाप छाया की तरह पीछा करते हैं और अव्यर्थ प्रहार करते हैं उसी तरह घर का, पिता-माता का, बन्धु का तथा समाज का भी परित्याग करके अनजान पथ पर निरुद्देश्य भाव से चलने वाले विनोद का पीछा मनोरमा ने नहीं छोड़ा। विनोद मनोरमा के लिफाफे को अपनी गोद में रक्खे चुपचाप बैठा रहा। इधर दिन का अन्त हो गया। उसकी छोटी-सी कोठरी में अँधियाली मानों ठूँस-ठूँसकर किसी अज्ञात् हाथों के द्वारा भर दी गयी। विनोद मानों अन्धकारपूर्ण कब्र में अपने गत जीवन के सपने देखता हुआ अविचलित भाव से चुपचाप बैठा रहा। अन्धकार के पर्दे पर मनोरमा की ज्योर्तिमयी मूर्त्ति रह-रहकर झिलमिला उठती और विनोद उस माया-मूर्त्ति को देखने के लिए जितना ही जोर लगाकर आँखों को बन्द करता मनोरमा की तस्वीर उतनी ही

स्पष्टतापूर्वक झिलमिलाती। घबराकर उस अभागे नवयुवक ने अपने दोनों वज्र-मुट्ठियों से अपने सिर के बिखरे हुए बालों को पकड़कर नोच लिया। वह पागल की तरह उठा और गोद में पड़े हुए लिफाफे को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़े हुए कमरे से बाहर हो गया, अन्धकारपूर्ण सुरंग जैसी सीढ़ियों को तै करता हुआ गली में आया, गली से खुली सड़क पर और फिर एक ओर चल पड़ा।

---

(११)

विनोद जब लौटकर अपने डेरे पर आया तो उसकी आँखें लाल हो रही थीं और जाड़े की भयानक रात भी प्रायः आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी। अभी भी उसके दाहिने हाथ में मनोरमा का बन्द लिफाफा था। दरवाजे पर पहुँच कर उसे साहस नहीं हुआ कि वह जमादार को पुकारे। भयंकर सर्दी पड़ रही थी और दूध के फेन की तरह पृथ्वी से आकाश तक कुहरा भरा हुआ था। विनोद बाहर के चौतरे पर चुपचाप बैठ गया और विक्षुब्ध सागर जैसे अपने व्याकुल विचारों में फिर डूबने-उतराने लगा। धीरे-धीरे रात समाप्त होने लगी और उषःकाल की विभा निखर पड़ी। थोड़ी देर बाद घर के भीतर से वृद्ध किन्तु चिड़ी जमादार के खाँसने की जब कर्कश ध्वनि सुन पड़ी तो विनोद ने साहस करके दरवाजे की कुंडी खटखटाई। अपनी दस साल की पुरानी और चीकट रजाई के भीतर से कर्कश स्वर में जमादार बोला—कौन है रे, मनुआ? आज जान पड़ता है तूने गहरा हाथ मारा है, इसीलिए सुबह को लौटा। ठहर जा बेटा, खोलता हूँ दरवाजा।

विनोद ने कोई उत्तर नहीं दिया। खाँसता हुआ जमादार आया और गम्भीर आवाज के साथ दोनों किवाड़ खुल गए। अपना बड़ी बड़ी सफेद मूँछों वाला काला-सा सिर खुले हुए किवाड़ों से बाहर निकाल कर जमादार धीरे से बोला—बेटा, मैं तो सारी रात तेरी राह देखता रहा। सच बतला, आज कितनी रकम हाथ लगी ?

विनोद जमादार की इन बातों का कोई अर्थ नहीं समझ सका। वह अचकचाया-सा बोला—जमादार साहब, मैं हूँ। मनुआ कौन है ? मैं नहीं जानता।

जमादार का स्वर हठात रूक्ष हो गया। उसने कहा—मैं अपने मालिक का नौकर हूँ, न कि तुम लोगों का। रात-रात भर शराब-खाने और इसी तरह की गन्दी जगहों में तुम घूमोगे और मैं उठकर दरवाजे खोलूँगा।

विनोद ने विनीत स्वर में कहा—जमादार साहब, क्षमा कीजिए, आज मुझसे तो जरूर ही गलती हो गयी, पर विश्वास रखिए, ऐसी जगहों में मैं नहीं जाता, जैसी जगहों के नाम आप गिना रहे हैं।

हवा का एक ठण्ढा झोंका आया और जमादार की बड़ी-सी और फूली हुई नाक बरफ के टुकड़े की तरह ठण्ढी हो गयी। वह शीत से कातर होकर चीख उठा और बोला—मैं बहस नहीं चाहता। आना चाहो तो आओ, नहीं तो किवाड़ बन्द करता हूँ।

विनोद आदेश मिलते ही घर के भीतर चला गया। जीवन में पहली बार उसे अपने घर और पराये घर के पार्थक्य का ज्ञान हुआ। इस जमादार जैसे दर्जनों नौकर उसके दरवाजे पर कृपा की रोटियाँ तोड़ा करते थे और उसका आदेश पालन करने में एक दूसरे से होड़ रखते थे। एक

मामूली जमादार के मुँह से अपमान जनक बातें सुनकर विनोद के अंतस्तल में जो "पूँजीपति" भावना छिपी हुई थी, वह भड़भड़ा कर जाग उठी। किन्तु तुरन्त ही उसने अपने इस संस्कार-गत विकार को दबा दिया, किन्तु उसका अस्तित्व वह नहीं मिटा सका। विनोद अन्धकार में दीवार टटोलता हुआ अपनी कोठरी में आया। किसी तरह सलाई ढूँढ़ कर उसने जब फूटी हुई काली चिमनी वाली लालटेन को जलाया तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि खूँटी के सहारे लटकने वाला उसका अन्तिम गरम कोट कम्बल और मेज पर की घड़ी, एकसा ही इतनी चीजें गायब हैं। उसके 'मजलूम भाई', उसके दयापात्र कॉमरेड जो उस घर के कोने-कोने में मधु-मक्खी के छत्ते की तरह आबाद थे, उनमें से ही किसी ने गरीबों के उद्धारक विनोद का उद्धार कर दिया था। उन कॉमरेडों में से किसी ने शायद यह सोचा हो कि गरीबों के लिए अपनी अमीरी का त्याग करने वाले विनोद को कीमती बढ़िया कोट, बेहद दामी इटालियन 'रग' और मूल्यवान घड़ी रखने का कोई अधिकार नहीं है।

विनोद के सिर पर चिन्ता का एक दूसरा पहाड़ लद गया। उसने अनुभव किया कि उसका सिर दर्द कर रहा है और अस्वाभाविक रूप से सर्दी भी लग रही है। खाट पर एक मोटी-सी गद्दी बिछी हुई थी और गद्दी के नीचे थी दरी। वह गद्दी को रजाई की जगह पर ओढ़कर दरी पर सो गया। सर्दी की कँप-कँपी बढ़ी, सिर दर्द बढ़ा और ज्वर का भी एक प्रबल झोंका आया। दिन चढ़े विनोद ने आँखें खोलीं—ज्वर पूरी तेजी पर था, साथ ही बायें पँजरे में तेज दर्द भी हो रहा था। उसने उठने का प्रयत्न किया पर उससे उठा न गया—वह फिर आँखें बन्द करके लेट गया। साथीहीन और धनहीन

अवस्था में विनोद दो दिनों तक प्रायः मूर्छित-सा ही पड़ा रहा। कब दिन आया, कब रात आई इसका उसे पता न था। पँजरे का दर्द इतना बढ़ गया था कि साँस लेने में भी उसे कष्ट जान पड़ता था।

× × ×

विनोद का कार्ड मनोहर को मिला। कार्ड पढ़ते ही मनोहर की आँखें भर आईं। कार्ड में लिखा था—"भाई, मैं विनय करता हुँ मुझे आकर छेड़ा न करो। यदि मुझे अब सताया जायगा तो मैं इस स्थान का त्याग कर दूँगा—कह नहीं सकता फिर मैं इस दुनिया के किस अज्ञात कोने की शरण लूँगा, इति।" इस कार्ड की उलटी प्रतिक्रिया मनोहर पर हुई।

मनोहर ने पुष्पा से जब विनोद के कार्ड की चर्चा की तो वह प्रत्यक्ष रूप से रो पड़ी। हक्का-बक्का-सा मनोहर पुष्पा की इस गहरी मनोवेदना की ओर देखता रह गया। वह अपने को स्थिर करके कहा—"पुष्पा देवी, मैं नहीं जानता था कि आपके हृदय में उस अभागे के प्रति इतना ·····।"

पुष्पा अपनी स्नेह-विह्वलता को रोक नहीं सकी और एक पुरुष के सामने अपने आपको इस तरह प्रकट कर देने से उसे लज्जित होना पड़ा। कुछ क्षण चुप रहकर वह बोली—"मनोहर बाबू, मुझे क्षमा करें—"मैं देख रही हूँ कि विनोद अपने को मिटाने के लिये कमर कस चुके हैं। उन जैसे तेजस्वी नवयुवक का यह सकरुण आत्मविसर्जन किसे विचलित न कर डालेगा। मैं देख रही हूँ कि उनका बलिदान होने ही वाला है। नहीं कह सकती उनके हृदय पर ऐसा कौन सा आघात लगा है, कैसी चोट लगी है······उफ्!"

मनोहर का गला भर आया। वह कहने लगा—"पुष्पा, मैं एक ऐसा अभागा हूँ जिसे न कोई भाई है और न बहन!

मन ही मन बहन के रूप में मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है और सहोदर के रूप में विनोद को। इस तरह मैंने अपने मन के उस गन्दक को भर डाला है जो मुझे हर घड़ी अपनी शून्यता से अधीर किये रखता था। मेरा दुर्भाग्य मेरे इस कल्पित सुख को भी छीनना चाहता है तो मेरी आत्मा क्यों न बिलखे।"

पुष्पा का हृदय फिर उमड़ आया। वह आँखों में आँसू भरकर मनोहर के शान्त गम्भीर मुंह की ओर देखती ही रह गई। मनोहर बोलता ही गया—मैं जानता हूँ, अच्छी तरह समझता हूँ, विनोद इस्पात जैसा कठोर युवक है। वह हथौड़े से चूर-चूर किया जा सकता है पर आग की आँच से गलाकर, पिघलकर मनमाने साँचे में ढाला नहीं जा सकता। विनोद को हम एक प्रकार से गँवा ही चुके—हाँ; आशा का जो छोटा प्रदीप हमारे हाथ में है उसे लेकर आँधी के सामने के कदम हम चल सकेंगे—पता नहीं, पुष्पा,—सोचो, जरा तुम भी सोचो। मैं थक गया।"

दोपहरी और माघ की कुछ उदास और तेज धूप। मनोहर के सुन्दर बँगले के सामने जो हरा मैदान है उस पर कुछ पीली पीली तितलियाँ उड़ रही हैं।

बरामदे में बैठी हुई पुष्पा एक टक निर्जन मैदान को देखती रह गयी। मनोहर एक अखबार के हासिये पर पेंसिल से सिर झुकाकर अकारण कुछ लिखने लगा। दीर्घस्वास त्यागकर पुष्पा बोली—भैया, चलो न एक बार तुम्हारे सर्वहारा भाई साहब के दर्शन कर आऊँ। न जाने क्यों मेरा हृदय आशंका से रह-रहकर घबरा उठता है।

मनोहर मन्त्राकर्षित-सा उठा। वह न तो समर्थन कर

सका और न विरोध। विनोद की गली में घुसते ही पुष्पा बोली—भैया!

मनोहर ने कहा—क्या है पुष्पा, मुझे आज्ञा दो तो मैं लौट जाऊँ!

पुष्पा ने धीरे से कहा—भैया, यही प्रार्थना तो मैं करना चाहती थी। आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं होती। भगवान्…।"

दोनों जब विनोद के दरवाजे पर पहुँच गये तो उन्होंने देखा, कुछ व्यक्ति खड़े हैं, एक स्ट्रेचर भी पड़ा है, जमादार अनावश्यक उछल कूद मचा रहा है। जो व्यक्ति खड़े हैं उनमें एक मकान मालिक भी है—पीली पगड़ी वाला मारवाड़ी! मनोहर जब घर में घुसने लगा तो जमादार ने कहा—"कहाँ जाते हो बाबू, आपका दोस्त यहीं आ रहा है।"

पुष्पा घबराकर चीख उठी और मनोहर की आँखों के सामने का सारा भूभाग चाक की तरह घूम गया। इसी समय ४, ५ व्यक्ति मूर्छित विनोद को जैसे तैसे टाँगे हुए बाहर निकले—मकान मालिक मुँह बनाकर घृणा से कई कदम पीछे हट गया और जमादार ने फर्श पर ही थूक कर मुँह फेर लिया। मनोहर ने विकल होकर कहा—"हे भगवान्!"

उसने पागल की तरह आगे बढ़कर कहा—"तुम लोग मेरी मोटर पर ले चलो—इसे सँभाल कर ले चलो।"

इतना कहकर मनोहर ने मूर्छित विनोद के लटकते हुए तप्त सिर को सँभाल लिया। किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी पुष्पा अपनी उमड़ती हुई रुलाई को रोकने के लिए दौड़कर जब विनोद के निकट आयी तो व्याकुल स्वर में मनोहर ने कहा—बहिन, हमारे भाग्य में यह भी देखना बदा था।

गली के नुक्कड़ पर ही कीमती गाड़ी खड़ी थी। उसी गाड़ी में विनोद को सयत्न लिटा कर विक्षिप्त की तरह मनोहर जब

सामान लेने के लिए उस मनहूस घर की ओर लौटा तो जमादार ने कहा—बाबू जी, अगर आप उनका समान लेने आये हैं तो मालिक से पूछ लीजिए। वह खड़े हैं।

मनोहर ने सेठ जी की ओर जलती हुई आँखों से देखा और पूछा—यह नादिरशाही हुक्म आपका है या आपके इस पालतू की बदतमीजी है ?

सेठ एक घुटा हुआ व्यापारी था जिसके पसीने से भी रुपयों की गंध आती थी। उसने अपने गंदे और सड़े हुए दाँत खिसोड़ कर कहा–बाबू जी, बिना किराए के पैसे दिए, आप सामान कैसे उठा सकते हैं।

मनोहर ने क्रोध से तिलमिलाकर कहा—कितना किराया—देना होगा ? जल्दी कहो।

जमादार ने अपनी जेब से फटी हुई नोट बुक निकालकर और उसके पेज उलट कर कहा--बस इसी पन्द्रह दिन के चार रुपए।

मनोहर गुर्राया और जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर सेठ के आगे फेंकता हुआ कहा—मेरे छः रुपये आपकी तरफ रहे। इस घर के किसी गरीब किरायेदार के नाम पर इन्हें जमा कर लेना।

सेठ जी, मुझे आप जैसों से जैसी उम्मीद थी, वह आज पूरी हो गयी। मैंने तो तुम्हें क्षमा कर दिया। पर मुझे भय है कि भविष्य को तुम्हें अपने एक-एक पाई का हिसाब देना पड़ेगा।

हाथ में नोट उठाए सेठ जी लुब्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे; वे मन ही मन मनोहर को मूर्ख, और अपने को सौभाग्यवान करार दे रहे थे। विनोद की कोठरी में सामान के नाम पर एक दरी और एक गद्दा मात्र था। लोटा, गिलास,

लालटेन, धोती आदि उसकी मूर्छितावस्था में ही उस घर के उत्साही और अवसरवादी भाई उठाकर चलते बने थे, जिन भाइयों की सेवा का व्रत लेकर विनोद अपने को खपा डालने का दृढ़ संकल्प कर चुका था। उस कोठरी में इधर-उधर कुछ किताबें भी बिखरी हुई थीं। मनोहर ने विनोद के उस ट्रंक में, जिसका ताला टूटा हुआ था, उन किताबों को उठाकर किसी तरह ठूँस दिया। नीचे ही फर्श पर मनोरमा का बन्द लिफाफा भी पड़ा हुआ उसे मिला जिसे उसने जेब में रक्खा। गद्दी के नीचे विनोद की डायरी मिली। उस डायरी को भी अच्छी तरह अपनी जेब में रख लेने के बाद ट्रंक उठाए हुए मनोहर घर से बाहर हो गया। उसने जाते-जाते दरवान से कहा—दरवान साहब, कोठरी में जो गद्दी और दरी पड़ी है वह आप किसी ऐसे व्यक्ति को दे दीजिएगा जिसे उनकी जरूरत हो। दरवान ने कृतज्ञता पूर्वक मनोहर के हाथों से ट्रंक लेते हुए कहा—हुजूर, हुक्म देते तो मैं ही इसे आपकी गाड़ी तक पहुँचा आता। यह काम आपके योग्य नहीं है। ये सेठ मारवाड़ी······क्या कहूँ हुजूर, आदमी नहीं पहचानते। पैसों के लिए जीते हैं और पैसों ही के लिए मरते हैं।······मैं तो हुजूर का भी गुलाम हूँ।

अपनी कोठी पर पहुँचते ही मनोहर ने फोन की सहायता से, शहर के प्रायः सभी बड़े-बड़े चिकित्सकों को एक साथ ही बुला लिया। पुष्पा यंत्रचालित निर्जीव पुतली की तरह कभी उस कमरे में जाती, जिस कमरे में विनोद को रक्खा गया था और कभी कमरे से बाहर आती। वह मानों बोलना भूल गयी थी। उसे रोने की भी याद नहीं रही।

मनोहर ने कहा—पुष्पा दीदी, मैं सब कुछ समझ रहा हूँ। परिस्थिति चिन्तनीय है। पर मैं तुम्हारे लिए कुछ भी उठा न

रक्खूँगा। यों तो विनोद के लिए मैं खुशी-खुशी अपना सर्वस्वांत कर सकता हूँ। पर अब तो मेरे कन्धों पर मेरी प्यारी दीदी का भार भी आ पड़ा।

इस दुख में लज्जा की एक सुकोमल, स्वाभाविक और स्नेहपूर्ण लहर पुष्पा के लुभावने चेहरे पर दौड़ गयी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। आनन्द के अतिरेक के कारण पुष्पा आत्म विस्मृता-सी होकर मनोहर की बाँह पकड़कर रुँधे हुए कण्ठ से बोली—मेरे भैया, तुम साक्षात देवता हो।

इसके बाद उसकी दोनों कजरारी आँखों से वे आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें उसके चिकने और गुलाबी गालों पर ढुलक पड़ीं। पुष्पा के अभ्यन्तर में जो भूकम्प का ताण्डव नर्त्तन हो रहा था उससे कातर और भीत होकर आँसू आँखों की राह बाहर;निकल पड़े, वे एक क्षण भी भीतर न टिके। मनोहर ने स्नेह-पूर्ण स्वर में डाँट कर पुष्पा से कहा—पगली, क्या उन करुणा से भरी आँखों की ओर तुम्हारा ध्यान है जो तुम्हारी और तुम्हारी जैसियों की एक-एक धड़कन को गिना करती हैं। यह पथ कण्टकाकीर्ण है। बदहोश-सी आगे बढ़ी तो अपने को और अपनों को एक साथ ही ले बीतेगी। अब समय नहीं है। तुम अपने होस्टल में जाओ। मैं जितना कुछ कर सकूँगा, करूँगा।

पुष्पा ने एक बार कृतज्ञतापूर्वक मनोहर की ओर देखा और बिना एक शब्द बोले चुपचाप उसकी गाड़ी में बैठ गयी। एक-एक करके डॉक्टर आने लगे। सभों ने अच्छी तरह जाँच करके यह निष्कर्ष निकाला कि विनोद पर प्लुरेसी का भयंकर आक्रमण हुआ है। किन्तु हालत अभी वैसी खतरनाक स्थिति में नहीं पहुँची है कि सुधारी न जा सके। दवा और नर्सों का समुचित प्रबन्ध करके डाक्टर चलते बने। दिन का अन्त हो

गया था और शहर की सड़कों पर बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठी थीं। ठीक इसी समय विनोद के बँगले से प्रायः एक सौ मील की दूरी पर भी रात उतरी। घर-घर में छोटे-छोटे प्रदीप जल उठे। मनोरमा अपने कमरे के दरवाजे को भीतर से अच्छी तरह बन्द करके विनोद को दूसरा पत्र लिखने बैठी। वह लिखती थी और रह रह कर आँचल से आँसू पोछती जाती थी।

---

(१२)

आधी रात विनोद की अवस्था कुछ-कुछ सुधर चली थी। पर उसके होश अभी नहीं लौटे थे। सप्ताह समाप्त हो रहा था। पुष्पा दिन में दो-दो, तीन-तीन बार आती और मनोहर से विनोद का समाचार कुछ ऐसी भाषा में पूछती जिस भाषा को लिखना बड़े से बड़े शब्द शास्त्री के लिए भी लोहे के चने चबाना है। उस रात को विनोद ने प्रलापावस्था में कई बार मनोरमा का नाम लिया और विशेष रूप से उत्तेजित होकर कहा--मनो-रमा······मनोरमा······तू कितनी सुन्दरी है, पर······जी चाहता है······कि तुम्हारे इस सौंदर्य को······गोली मार दूँ। कहाँ है······मेरा रिवाल्वर।

इतना कहकर विनोद ने खाट से उछल पड़ने का घोर प्रयत्न किया। मनोहर की सहायता से नर्स ने उसे उठने से रोका तो उसने गुर्रा कर फिर कहा—दुनियाँ की······प्रत्येक सुन्दरी रमणी······गोली मार देने······के लायक हैं। मैं··· मैं···इनका ····खून कर दूँगा। तुम कौन हो जो मुझे······ रोकते हो। मनोरमा, सुन्दरी नागिन··· तूने····पत्र क्यों भेजा?

मनोहर का दिमाग चकरा गया। जब विनोद शान्तिपूर्वक लेट गया तो उसे उस लिफाफे की याद आयी जो उसे विनोद की कोठरी में मिला था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में जाकर विनोद ने उस लिफाफे को निकाला और मन ही मन कुछ देर तक आगा-पीछा करके उसे खोल डाला। साफ स्वच्छ कागज पर काले और गोल-गोल अक्षर मानों खुदे हुए थे। मनोहर साँस रोक कर पढ़ने लगा—

बाबू,

मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं जानती हूँ, तुम जानते हो, अपने—पराये सभी जानते हैं, देवता, अग्नि और गुरु-जनों के सामने मेरे इस शरीर को तुम्हें नहीं सौंपा गया। इसका अधिकारी कोई दूसरा ही है। मैं नहीं चाहती, धर्म नहीं चाहता और समाज भी नहीं चाहता कि मैं इस शरीर को, जिसका यह हो चुका है उससे छीन कर तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर दूँ। सात बार फेरी देकर जो बन्धन बाँधा जा चुका है वह सात हजार बार भी उल्टा घूमने से नहीं खुल सकता। यह एक ऐसा सत्य है जिसे छिपाना आकाश को छिपाने जैसा मूढ़ प्रयत्न होगा। यह सत्य है कि मेरा यह शरीर इस भौतिक जगत में सूम के गड़े हुए धन की तरह है जिसे डाकू या चोर अपने अधिकार में कर सकते हैं या मिट्टी। मुझे मालूम है कि लाख प्रलोभन मिलने पर भी तुम डाकू या चोर बनना पसन्द न करोगे और मिट्टी बनकर इसे पचा जाने की क्षमता तुममें नहीं है।

मैं यह नहीं छिपाऊँगी कि मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति उद्वेग-पूर्ण स्नेह है। मुझे पता नहीं कि तुम एकाएक घर छोड़ कर क्यों चले गए ' 'द तुम्हें जाना ही था तो अपने निकट बुलाकर एक बार मुझे धिक्कारने और मेरे दान को अपने पैरों

से रौंद कर चले जाते। तुमने मुझे कुछ भी नहीं कहा। यही बात मेरे हृदय में कील की तरह गड़कर मुझे पगली बनाए डालती है। मेरे जीवन का संतुलन तो बिगड़ ही चुका, अब मैं न तो वर्तमान से डर रही हूँ और न भविष्य का ही मुझ पर कोई अधिकार रहा। इस पत्र के साथ कागज का जो दूसरा टुकड़ा है उस टुकड़े पर जो पता लिखा हुआ है उसी पते पर पत्र देना।

विस्मृता,

मनोरमा।

मनोहर की उत्सुकता और विकलता और भी बढ़ गई। सैकड़ों प्रकार के प्रश्न उसे घेर कर चीखने-चिल्लाने लगे। मनोरमा कौन है? वह विवाहिता तो है पर विनोद के प्रति उसका खिंचाव असाधारण है—वह कैसी पतिता है। मनोहर गोद में खुला पत्र रक्खे बहुत देर तक बैठा रहा। वह बार-बार पत्र को पढ़ता और यह जानने का प्रयत्न करता कि इस रहस्यपूर्ण पत्र की लिखने वाली कौन है। विनोद ने भी मनोरमा का नाम प्रलापावस्था में लिया है—मनोहर का दिमाग चकरा गया। उसने विनोद की डायरी पढ़ने का साहस किया पर उससे यह अन्याय करते न बन पड़ा। मनोहर का मन गलतफहमी से भर गया किन्तु शीघ्र ही गलतफहमी भी घोर घृणा में बदल गई जब उसे पता चल गया कि मनोरमा विनोद की भाभी है। मनोहर कई बार विनोद के साथ उसके घर पर गया था—उसकी स्मृति ने गलतफहली को नष्ट कर डाला पर घृणा के नष्ट होने का कोई उपाय नजर नहीं आया। दिन पर दिन विनोद की स्थिति सुधरती गई। वह खतरे से बाहर हो गया और उसकी पूर्व चेतना भी लौट आई तो एक दिन उसने मनोहर से कहा—"भैया, तुमने मुझे फिर लौटाकर

मेरे प्रति अन्याय किया—आखिर किस सुख या आशा के लिये मुझे इस जलती रेत के अनन्त मैदान में तुमने डाल दिया।"

मनोहर ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—तुम आराम करो—स्नेह कोई धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणितशास्त्र या पेनल कोड देखकर नहीं करता। मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मेरे इस नाशवान शरीर के भीतर जो तुम्हारा 'भैया' अमर रूप में वर्तमान है उसी ने सब कुछ किया—मैं तो निमित्त मात्र हूँ।

विनोद थका हुआ-सा बोला—मैं एक प्रार्थना करूँगा, मानोगे ?

विनोद के दुर्बल हाथ को अपने हाथ में लेकर वाष्परुद्ध कंठ से मनोहर ने कहा—"तुम आदेश दो······मुझे दुराव के धक्के से दूर मत ठेलो विनोद !"

विनोद स्नेह-पूर्ण आँखों से मनोहर को कुछ देर तक देखता रहा और बोला—मैं और कुछ नहीं कहता—मैं चाहता हूँ कि तुम इन देवियों से मेरी रक्षा करो। मैं इन्हें देखता हूँ तो मेरा हृदय न जाने क्यों जल उठता है—इनकी "दया" से तुम मेरी रक्षा करो।

मनोहर ने अकचका कर कहा—क्या कहा तुमने ?

विनोद ने थके हुए स्वर में कहा—भैया, मेरे अच्छे भैया, मुझे भुलावे में मत रक्खो तुम समझ कर भी ना-समझ बनते हो। मैं इन देवियों की स्मृति से भी घिनाता हूँ—ये देखने में फूल की तरह कोमल हैं पर इनकी आत्मा बड़ी ही घिनौनी होती है। तर्क करने का बल मुझ में नहीं है और इस धारणा के प्रतिकूल मैं कुछ सोचना भी नहीं चाहता। मैं प्रार्थना करता हूँ, जब तक मैं यहाँ हूँ, तुम इन भयानक देवियों को मेरे सम्मुख आने से रोक दो।

मनोहर घबड़ा कर उठ खड़ा हुआ और बोला—'पुष्पा' को भी !"

विनोद ने कहा—पुष्पा हो या वीणा, यह तुम्हारी नर्स हो या कोई दूसरी—मैं स्त्रीमात्र से घिना उठा हूँ। इनका मैं विश्वास नहीं करता और जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता उसकी छाया से भी दूर रहना ही बुद्धि का आग्रह है।

मनोहर के अवाक् मुँह से 'क्यों' निकला आरहा था पर मनोरमा का जो पत्र उसने पढ़ा उससे उसे 'क्यों' कहकर प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। विचारों के आघात प्रति-घातों से अधीर होकर वह कमरे में टहलने लगा, उसकी विकलता क्षण-क्षण बढ़ती ही जा रही थी। विनोद ने दीर्घश्वास त्यागकर कहा—क्या मेरी इस प्रार्थना को······! मनोहर दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप कर बोला—विचित्र···उफ्··· इतनी भयानक प्रतिक्रिया······क्या उत्तर दूँ ?

कमरे का कीमती पर्दा हटाकर वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। मनोहर को परीशान देखकर वह बोली—नमस्ते, मनोहर बाबू···क्या मैं आ सकती हूँ ?

मनोहर ने अकचका कर कहा—आप······ठहरिये···मेरे पुस्तकालय में चलिये···मैं आया। क्षमा···कीजियेगा।

वीणा घबराकर एक कदम पीछे हट गई और बोली-- कुशल तो है। आपको क्या हो गया है···?

वीणा मनोहर के पुस्तकालय में जाकर बेहद घबरायी-सी बैठ गयी। मनोहर भी तुरन्त ही आया और वीणा के सामने अपराधी की तरह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। वीणा की विकलता सीमोल्लंघन कर गयी। वह कुर्सी से उठती हुई बोली—आपको क्या हो गया है, मनोहर बाबू ? आखिर यह सब मैं क्या देख रही हूँ ?

मनोहर ने अपराधी की तरह कहा—कुछ नहीं। विनोद का दिमाग कुछ अस्तव्यस्त-सा हो गया है। वह एकान्त पसन्द करता है और डाक्टर की भी यही राय है। यही कारण है कि मैंने आपको ठहरने न दिया। आप बुरा न मानियेगा। हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रत्येक प्रकार की असुविधा बहन करके उसकी रक्षा करें।

वीणा का सारा सन्देह मिट गया तो उसके सुन्दर मुखड़े पर कुमुदिनी की तरह मुस्कराहट खिल उठी। वह शान्त स्वर में बोली—इतनी छोटी-सी बात को आपने तूल दे दिया ? मैं तो आपसे मुलाकात करने आयी थी। मै क्यों आपके बीमार मित्र का शान्ति-भंग करने लगी ?

इसके बाद विशेष रूप से मुस्कराकर वीणा ने उस अव्यर्थ महा-अस्त्र का सफल प्रयोग उस कटाक्ष-जर्जर निरीह नवयुवक पर किया, जो उसके आगे हाथ बाँधे खड़ा था। मनोहर आपादमस्तक सिहर उठा और बोला—त्राहिमाम् देवि वीणे। मुझे तो आपकी नाराजी की कल्पना ही मृतप्राय कर डालती है। यदि आपको सचमुच नाराज देख लूँ तो इसमें सन्देह नहीं···।

जिस प्रकार शिकार पर सफल प्रहार करके शिकारी खड़ा होकर प्रसन्न आँखों से दम तोड़ने वाले शिकार का तड़पना देखता है और मन ही मन अपनी निशानेबाजी पर इतराता भी है, ठीक वही आनन्द वीणा को भी प्राप्त होने लगा। वह नारीत्व का अधिकार अपने सुरीले कण्ठ में भर कर बोली—अच्छा। अब महा महिमामयी देवी आपको आदेश देती हैं कि आप बिना किसी तर्क-वितर्क के आसन ग्रहण करें। आपके अब वे अपराध भी क्षम्य हो गये जिन्हें आप भविष्य में जानते या अनजानते करने वाले होंगे।

मनोहर हँसकर दूसरी कुर्सी पर बैठ गया तो वीणा फिर

बोली—अच्छा यह तो बतलाइए, अपने इस बौड़म मित्र के साथ ही आपने भी कॉलेज को प्रणाम कर लिया है, क्या यह उचित है ?

मनोहर बोला—आपका कहना सही है, पर न जाने क्यों पढ़ने-लिखने से मेरा जी उचट गया। मैं तो घर चला जाता, पर विनोद के चलते यहाँ पड़ा हूँ।

मनोहर के घर जाने की बात सुनकर वीणा कुछ मर्माहत-सी हो गयी। मनोहर ने कुछ देर रुक कर फिर कहना आरम्भ कया—आप जानती हैं कि नौकरी करने के विचार से मैंने कॉलेज का सेवन नहीं किया था। मैं तो पढ़ना चाहता था। सो इतना पढ़ चुका हूँ कि अब स्वाध्याय जारी रखने में कोई अड़चन नहीं रही।

दीर्घ श्वास त्याग कर वीणा ने कहा—यह मैं जानती हूँ कि आप एक राजकुमार हैं, पर मैं इस खयाल से पढ़ने की बात कह रही थी कि इस बहाने आप यहाँ होते तो हमारा साथ बना रहता।

भावावेग में इतना कहकर वीणा मन ही मन लज्जित हो गयी। अनजानते ही मानसिक लगाव का जो रहस्य उसके मुँह से प्रकट हो गया उसका उसे पछतावा हुआ। वीणा अखरोट की जाति की रमणी थी जिसके गूदे के ऊपर पत्थर की तरह कड़ा छिलका होता है पर विधिवशात् उसके पेचीले मन की एक बात फिसल कर जो जीभ की राह बाहर निकल पड़ी, उसने मानों भंडाफोड़ ही कर डाला है। मनोहर ने कुछ सोच कर कहा—इस स्नेहपूर्ण भावना के लिए आपका मैं कृतज्ञ हूँ। पर जिस भवसागर को आज तक केवल तट पर खड़ा होकर मैं देखता रहा, अब जी चाहता है क एक बार उसकी पगली

लहरों से भी खेलूँ। पिता जी तो हैं नहीं। सारा स्टेट है मैनेजर के अधीन। माता जी का आग्रह है कि मैं······।

मनोहर बोलता-बोलता जब सहसा रुक गया तो वीणा अपने सूखे होठों को चाटकर बोली—अचानक चुप क्यों हो गये, मनोहर बाबू ? माता जी की सबसे बड़ी कामना तो यही होगी कि आपके हाथ हल्दी से पीले किए जायँ।

मनोहर ने मुस्कराकर कहा—वीणा, मुझ जैसे परम रूपवान सुपुरुष के लिए अभी तक विधाता ने शायद किसी भुवन-मोहिनी रमणी का निर्माण ही नहीं किया। मैं इस भय से शीशे में अपना चेहरा नहीं देखना कि कहीं मैं अपने ही ऊपर मुग्ध न हो जाऊँ।

वीणा इस तीव्र व्यंग्य की चोट से छटपटा उठी। मनोहर वस्तुतः एक स्वस्थ और परिपूर्ण सुन्दर नवयुवक था। किन्तु उसने अपना शब्द-चित्र ऐसा उपस्थित किया कि वीणा असमंजस में पड़ गयी। यदि वह चुप लगा जाती है तो मनोहर के कथन का मौन समर्थन होता है, और कुछ बोलती है तो उसे मनोहर के आक्षेपों का खण्डन करना पड़ता है। मनोहर के रूप का लोहा उस रूप-गर्विता का मन तो काफी अर्से से मान चुका था, पर आज वह ऐसी स्थिति में फँस गयी कि अपना पराजय उसे स्वयं स्वीकार करने को वाध्य होना पड़ा। वीणा घबरायी-सी बोल उठी—छिः-छिः आप क्या कह रहे हैं मनोहर बाबू ?

मनोहर कहा— तो क्या मैं मान लूँ कि मैं कन्दर्प-दर्पहारी हूँ ? वीणा एक हल्की-सी अँगड़ाई लेकर बोली—आप क्या हैं और क्या नहीं है, यह जानना मेरे हिस्से का काम है। आपने मुझे थका दिया।

---

(१३)

मनोरमा ने विनोद को पत्र लिखकर यह आशा बाँध रक्खी थी कि या तो उसे उत्तर मिलेगा या विनोद का दर्शन। पर दिन, सप्ताह और सप्ताह मास बनकर जब समाप्त हो गया तो उसकी विकलता बहुत ही बढ़ गयी। उसने अपनी जिस सखी का पता अपने पत्र में विनोद के पास उत्तर देने के लिए भेजा था, उस सखी से वह नित्य पूछती और एक ठण्ढी आह भर कर तरह-तरह की दुश्चिन्ताओं में डूब जाती। उसका जीवन धीरे-धीरे उसके लिए भारवत होता गया। सास-स्वसुर का का स्नेह, पति का प्रेम, और नौकरानियों का आदर एक बारगी ही समाप्त हो गया था। यद्यपि उसे किसी तरह की भी डाँट-फटकार या भर्त्सना का सामना नहीं करना पड़ता था, फिर भी जो चुप्पी और मूक तटस्थता की मार उसके हृदय पर चारों ओर से पड़ा करती थी, उसने उसके जीवन की सरसता को मानों रुई की तरह धुन डाला था। दिन भर मनोरमा अपनी कोठरी में पड़ी-पड़ी अपने हृदय की धड़कनों को गिना करती और रात-रात भर आकाश के तारों से बातें किया करती। जो कुछ भी हो, उसने विनोद की ओर बढ़ने का हठ नहीं छोड़ा और वह ज्यों-ज्यों अपनों से दूर हटती गयी, विनोद के निकट खिसकती चली गयी। दयामयी कमला शाप-ग्रस्त अहिल्या-सी अपनी आलुलायित कुन्तला पुत्र-बधू को जब कभी देख लेती तो उसका हृदय उमड़ उठता, पर क्षण भर के बाद ही करुणा का स्थान घृणा ले लेती और वह मुँह फेर कर दूसरी ओर चली जाती। कई बार मनोरमा अपनी सास के निकट बिना बुलाए इस लालसा से जाती कि उसे घर के कामों में योग देने का सौभाग्यपूर्ण आदेश प्राप्त हो, पर कमला एक शब्द भी नहीं

बोलती और अपने सामने पड़े हुए कामों को अपने ही अभ्यस्त हाथों से निपटा डालती। मनोरमा के हृदय में जो खिन्नता पैदा होती वह शीघ्र ही झुँझलाहट बनकर फूट पड़ती।

एक दिन मनोरमा ने कमला से कहा—माँ जी, मेरा जी नहीं लगता। यदि आपका आदेश हो तो मैं······।

कमला ने जल्दी से कहा—क्या मायके जाना चाहती हो? अच्छा हो कि छोटे बाबू (प्रमोद) से तुम पूछ लो।

जब तक मनोरमा और कुछ कहे, कमला पूजा की थाल उठा कर ठाकुरवाड़ी की ओर चली गयी। मनोरमा खम्भे का सहारा लिए जिस तरह खड़ी थी, उसी तरह खड़ी रह गयी। उसे इस परिवर्त्तित परिस्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान था और वह जानती थी कि वह अपने उच्च गौरव-सिंहासन पर से किस अपराध के चलते नीचे उतार दी गयी है। यदि उसके मन में अपनी पूर्व स्थिति के लिए कुछ गर्व होता तो उस स्थिति से विलग पड़ जाने का उसके हृदय में मलाल भी होना सम्भव था। सुहाग के नाम पर जिस सिन्दूर का भार वह ढो रही थी, उस सिंदूर को देखकर वह कभी भी पुलकित नहीं हुई, बल्कि लोकमत की प्रबलता से बाध्य होकर जब-जब वह शीशे के सामने बैठकर अपने माँग में लाल रङ्ग का चूर्ण विशेष लगाती तो उसका हृदय इस व्यर्थ की विडम्बना को देखकर एक दबी हुई झुँझलाहट से भर जाता।

मनोरमा अपने कमरे में आयी और कागज के एक छोटे से टुकड़े पर उसने अपने पतिदेव को एक पत्र लिखा। उस पत्र में उसने केवल मायका जाने की स्वीकृति ही माँगी थी। शायद अपने स्वामी को एक बार पधार कर 'दर्शन' देने की बात लिखना उसने आवश्यक न समझा।

मन्दिर से लौटते हुए प्रमोद के हाथों में जब छोकरे ने

पत्र दिया तो उसने अत्यन्त शान्त भाव से पढ़ लेने के बाद कहा—मैं आ रहा हूँ।

मनोरमा अपने कमरे की खिड़की से यह दृश्य देख रही थी। थोड़ी देर बाद प्रमोद ने कमरे के दरवाजे पर खड़े होकर पूछा—मायके जाकर क्या करोगी ?

मनोरमा दूर पर सिर झुकाए खड़ी थी और अपने आँचल के चौड़े किनारे को अपनी सुन्दर उँगली में लपेट और खोल रही थी। प्रमोद ने फिर अपने प्रश्न को दुहराया तो मनोरमा ने कहा—जी नहीं लगता। आखिर मेरी यहाँ कोई जरूरत भी तो नहीं है ?

प्रमोद ने शान्त-गम्भीर स्वर में कहा—तुम स्वतन्त्र हो। मैं क्या कह सकता हूँ।

इतना कह कर जब प्रमोद धीरे-धीरे सिर झुकाए चला गया तो मनोरमा अपने दोनों हाथों से मुँह ढाँक कर खाट पर बैठ गयी और कहा—मैं स्वतन्त्र हूँ, यह मेरे लिए कितना बड़ा अभिशाप है। जिसका बन्धन मुक्ति से भी अधिक मूल्यवान माना गया है वह जब मुझे स्वतन्त्र घोषित कर रहा है तो फिर अब सोचने-समझने के बन्धनों को भी मुझे तोड़ डालना ही चाहिए।

प्रमोद फिर लौट कर दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। ममोरमा की सारी बातें उसने सुन लीं। उसने कहा—मनोरमा; यदि मैं तुमसे यह कहूँ कि तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा तो तुम्हारे मन को कष्ट तो नहीं होगा ?

मनोरमा ज्यों की त्यों बैठी रही, उसने कोई उत्तर नहीं दिया और न खाट से उठी।

प्रमोद ने फिर कहा—मनोरमा, मैं क्या पूछ रहा हूँ ?

मनोरमा ने कहा—आप स्वामी हैं और मैं हूँ आपकी

आश्रिता। मेरे सम्बन्ध में आप जो कुछ भी निर्णय देंगे वह मेरे लिए मान्य होगा। स्त्रियाँ तर्क करना नहीं जानतीं, आदेश पालन करना जानती हैं।

प्रमोद लौट पड़ा। उसके कानों में मनोरमा के केवल दो ही शब्द गूँजते रहे—'स्वामी' और 'आश्रिता'। यदि उसका वश चलता तो वह संसार के शब्द-कोष में से 'पति', 'प्रियतम' 'गृहिणी', 'जीवन-सहचरी', 'जाया' आदि शब्दों को एक साँस में ही निकालकर फेंक देता और इन शब्दों को काम में लाने वालों पर भयंकर दण्ड की व्यवस्था कर देता। मनोरमा उसकी रानी नहीं, पत्नी नहीं, गृह-लक्ष्मी नहीं, 'आश्रिता' मात्र रह गयी और वह रह गया 'स्वामी', 'प्रभु' और 'शासक' मात्र।

प्रमोद का हृदय एक गहरी उदासी और अभाव से ओत-प्रोत हो गया। शासक, प्रभु या स्वामी बनने में एक गर्वपूर्ण सुख भले ही किसी को प्राप्त होता हो, किन्तु आनन्द की उपलब्धि इन सारी उपाधियों के रहते सम्भव नहीं। एक पुरुष अपनी "जाया" का प्रभु बनकर भले ही गर्वपूर्ण आत्मगौरव की अनुभव करता हुआ अपनी शक्ति की झलक प्राप्त करे, किंतु जीवन, सुख या गर्व से जीवन नहीं रह सकता, वह तो उकठा काठ रह जाता है। अपनी सारी सरसता और कोमलता गँवा कर मानव जब जीवित पिशाच की तरह पृथ्वी को रौंदना आरम्भ कर देता है तब नरक की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। क्योंकि फिर तो सारा मानव-समाज ही नरक बन जाता है।

मनोरमा का पितृ-वंश सदा से निर्धन था। उसके पिता अदालत में एक बहुत ही स्वल्प वेतन पाने वाले क्लर्क मात्र थे, जिन्हें किसी ने भी कभी हँसते या मुस्कराते नहीं देखा।

मनोरमा का जन्म किराए की ही कोठरी में हुआ था। मनोरमा सदा से अपने भीतर इस धारणा को एक झुँझलाहट के साथ छिपाए हुए रही कि प्रमोद एक धनी जमींदार का पुत्र है और वह है एक गरीबनी तथा उसकी आश्रिता। माता-पिता की गरीबी ने उसके हृदय को कभी भी उल्लास से या गर्व से पनपने नहीं दिया। वह अपने पति-गृह में काफी अरसे तक रह कर भी यह नहीं भूल सकी कि वह एक गरीब की लड़की है और एक जमींदार के घर की आश्रिता। वह मालिकिन या गृह-लक्ष्मी बनने का दावा कभी नहीं कर सकी। अपने पति को उसने सदा भय की दृष्टि से, कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा, अपनापन की दृष्टि से नहीं। उसने कभी भी अपने पति पर अपने पत्नीत्व का अधिकार नहीं जताया, बल्कि डरी, सहमी और सिर झुकाये ही काल-यापन करती रही। आर्थिक विषमता की जो प्रतिक्रिया मनोरमा के जीवन में हुई उसने उसे पनपने न दिया। वह अपने ही भंडार के द्वार पर भिखारिणी की तरह खड़ी होती और यह किसी तरह भी अपने को समझा न सकी कि वस्तुतः वह उस भंडार की अन्नपूर्णा है। मनोरमा के इस भाव की प्रतिक्रिया प्रमोद पर दूसरे ही रूप में हुई।

प्रमोद किसी प्रकार भी जब मनोरमा का अपनापन प्राप्त नहीं कर सका तो उसने अपने मन के अभाव को हरि-चर्चा के द्वारा पूर्ण करने का कठोर प्रयत्न किया। अपनी अन्तरात्मा की निगूढ़ आकुलता की पीड़ा को, छटपटाहट को भूलने के लिए ही भरी जवानी में प्रमोद ने कीर्तन, भजन, व्रत और उपवास का आश्रय ग्रहण किया। यह तो अपने आपको ठगने का, भुलावे में रखने का एक बहाना मात्र था। भावुक प्रमोद बार-बार मनोरमा की ओर दौड़ कर जाता और यह प्रयत्न करता कि उस परम रूपवती नवयुवती का अपनापन और

छलकता हुआ स्नेह उसे प्राप्त हो, पर इसके बदले में उसे एक ऐसी स्त्री का सामना करना पड़ता जो सहमी हुई है, डरी हुई है और भय से अपनी समस्त भावनाओं को अपने भीतर सतर्कतापूर्वक छिपाये हुए है। यदि मनोरमा प्रमोद पर कभी रुष्ट होती, उसे मीठी फटकार बताती या उसके हाथ से माला और गीता की पुस्तक छीन कर दूर फेंकती हुई उसे कैदी की तरह अपने सामने मुश्कें बाँध कर खड़ा किए रहती तो प्रमोद का मानसिक धरातल हठात् बदल जाता और जीवन के अभाव से धीरे-धीरे सूखकर ऐंठ जाने वाले अपने हृदय में वह शाश्वत आनन्द का अनुभव करता, किन्तु मनोरमा की सभय, कातर और तटस्थ व्यवहार-पद्धति ने उसे जल से निकालकर दलदल पर फेंक दिया।

जब प्रमोद चला गया तो मनोरमा खाट पर औंधे मुँह लेट गयी। वह न तो इस घर में रहना चाहती थी और न जाने ही के लिए उसकी आत्मा स्वीकृति देती थी।

सदा की तरह दिन समाप्त हो गया। रात आयी। नौकरानी कमरे में रोशनी रखकर जब जाने लगी तो मनोरमा ने कहा—माँ जी कहाँ हैं ?

नौकरानी ने कहा—रसोई घर में।

फिर मनोरमा ने पूछा—और तुम्हारे बड़े बाबू ?

नवयुवती नौकरानी ने मुस्कराकर कहा—मेरे बड़े बाबू ?

नौकरानी ने इस स्वर में चौंककर कहा कि मनोरमा मन ही मन कुछ लज्जित-सी हो गयी। उसने उस नौकरानी से फिर कहा—अच्छा, तुम्हारे नहीं, हमारे बड़े बाबू कहाँ हैं ?

नौकरानी ने फिर मुस्कराकर कहा—बहू जी, आप "मेरे बड़े" बाबू क्यों नहीं कहतीं ?

मनोरमा के हृदय में अचानक एक हूक-सी पैदा हुई। उसने

कुछ सोचकर कहा—कहना तो यही चाहती हूँ, पर न जाने क्यों मुँह से दूसरी ही बात निकल पड़ती है।

समवयस्का होने के नाते नौकरानी मुँह लगी थी। वह मनोरमा के पैरों के पास आकर बैठ गयी और दुख भरे स्वर में कहा—बहू जी, मैं कहूँगी कि परमात्मा ने आप अमीरों को सुख-सुहाग सब कुछ प्रदान किया है, किन्तु……।

मनोरमा ने कहा—तुम्हारा यह किन्तु क्या है? जरा साफ-साफ कहो—

छोकरी नौकरानी पुरखिन की तरह गम्भीर मुँह बना कर कहने लगी—बहू जी, मैं देखती हूँ आप बड़े आदमी मखमल की सेज पर भी पड़े-पड़े कड़ियाँ गिना करते हैं और हम गरीब अपनी कथरी पर जिस मीठी नींद का सुख अनुभव करते हैं वह आपके मयस्सर नहीं है। सोने के थाल में परोसा हुआ कीमती भोजन दुश्चिन्ताओं के मारे आप जैसों से खाया नहीं जाता; कंठ के नीचे नहीं उतरता, पर हम गरीब दिन भर की कड़ी मिहनत के बाद मिलजुल कर रूखी-सूखी रोटी के टुकड़ों को जिस स्वाद और आनन्द से खाते हैं वह आप जैसों के भाग्य में नहीं है।

मनोरमा को उसकी बातें तथ्यपूर्ण जान पड़ीं। वह बोली—तू ठीक कह रही है। मैं भी यही चाहती हूँ कि यदि सोने के पिंजरे से छुटकारा मिल जाय तो जंगल की किसी डाल पर दो तिनकों की अपनी दुनिया बसाऊँ और जीवन की शेष घड़ियों को हँस-खेल कर व्यतीत करूँ।

नौकरानी ने दाँत से जीभ काटकर और दोनों हाथ अपने कान पर रखकर कहा—राम-राम। बहू जी, आप क्यों ऐसा सोचती हैं? परमात्मा ने तो सब कुछ आपको दिया है।

किसी चीज की कमी नहीं है। यदि मैं आपकी जगह पर होती तो—

इतना कहकर नौकरानी अचानक लज्जित हो गयी। उसके श्याम वर्ण के सुगठित सुन्दर चेहरे पर लज्जा की ललाई की जो झलक स्पष्ट हो गयी उसे मनोरमा नहीं देख सकी। नौकरानी जाने का उपक्रम करती हुई बोली—तो आपका क्या हुक्म है ? बड़े बाबू को आपकी ओर भेज दूँ ? वे इस समय भोजन करने आएँगे।

मनोरमा कुछ देर तक चुप रही और फिर ठंढी साँस छोड़ कर बोली—नहीं, किसी को कष्ट देना उचित न होगा। यदि समय मिल जाय तो तू ही आ जाना। जी नहीं लगता।

---

(१४)

बंगाल में अकाल पड़ा था और उसके लिए कॉलेज में जो मीटिंग हुई थी उस मीटिंग ने अकाल को मार भगाया था या नहीं इसका पता तो नहीं चला, पर जिस प्रान्त में विनोद का घर था उसी प्रान्त का एक उपजाऊ हिस्सा मलेरिया, चेचक और हैजा से आक्रान्त हो गया। अखबारों में सहायता की अपीलें छपने लगीं और धनिकों ने आत्म-विज्ञापन का, पत्रों में नाम छप जाने का और इस तरह वाहवाही लूट लेने का अच्छा अवसर समझकर दान देने का उत्साह दिखलाना भी आरम्भ कर दिया। शहर के उत्साही कार्यकर्त्ताओं की टोलियाँ चन्दे उगाहने के काम में दत्तचित्र दिखलाई पड़ने लगीं। कुछ धनी सज्जन जिन्हें चालाकी की हवा लग गयी थी, दल बना कर इधर-उधर दौड़ते हुए नजर आने लगे। मनोहर ने एक दिन विनोद से कहा—मैंने और कुछ अध्यापकों ने भी बंगाली

प्रिंसपल से कहा कि एक मीटिंग करने का वे आदेश दें और स्वयं उसका सभापतित्व स्वीकार करें। इस समय जब कि अपने प्रान्त का एक हिस्सा काल-कवलित होता जा रहा है, हम कैसे चुपचाप बैठ सकते हैं, किन्तु प्रिंसपल ने हमारी दोनों न्यायोचित प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया।

विनोद ने कहा—भाई, अब तो मैं स्वस्थ हो गया हूँ। यहाँ मेरा जी भी नहीं लगता। यदि तुम आदेश दो तो मैं पीड़ितों की सेवा करने की ओर ध्यान दूँ।

मनोहर ने मुस्कराकर कहा—विनोद, तुम्हें याद है, तुमने कॉलेज वाली मीटिंग में क्या कहा था? अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल क्या तुम पीड़ितों की सेवा कर सकोगे?

सहसा गंभीर होकर विनोद कहने लगा—भाई, मुझे सब कुछ याद है, पर न जाने क्यों अब मैं किसी भी दुखिया को देखकर भीतर-ही-भीतर रो उठता हूँ। मेरी मानसिक दृढ़ता में कब और कैसे करुणा की घुन लग गयी यह मैं नहीं कह सकता। आज भी मेरे विचार वही हैं जो थे पर मैं अपने आप से तंग आ गया हूँ।

मनोहर ने कहा—मुझे प्रसन्नता है कि जब तुम्हारे भीतर करुणा का संचार होने लग गया है तो उसका प्रसाद हम भक्तों को भी अवश्य ही प्राप्त होगा, किन्तु तुम्हारा स्वास्थ्य अभी इस योग्य नहीं हुआ है कि तुम छूत की बीमारियों वाले जहरीले हल्के में जाकर कुछ कर सको।

विनोद चुप लगा गया। थोड़ी देर बाद पुष्पा आयी और हारी-थकी-सी एक कुर्सी पर बैठती हुई बोली—मैं देख रही हूँ कि आज विनोद बाबू काफी गंभीर बने बैठे हैं। इन्हें तो प्रसन्न रहना चाहिए।

मनोहर ने कहा—हजरत हैजा और चेचक से पीड़ित क्षेत्रों

में सेवा करने जाएँगे। खटाई से निकल कर चूक में कूद पड़ने की तैयारी हो रही है।

पुष्पा घबराई-सी बोली—नहीं, नहीं, आप इन्हें ऐसा न करने दीजिए। यह तो साफ-साफ आत्म-बलिदान करने का उपक्रम है।

विनोद ने पूछा—आखिर मैं करूँ क्या ? मैं नहीं चाहता कि एकान्त मुझ पर प्रहार करता रहे और मैं आशा-भाषा-हीन बना उसके प्रहारों को चुपचाप सहा करूँ। मैं अकेला रहना नहीं चाहता और न किसी का साथ ही मुझे रुचता है।

पुष्पा मन ही मन प्रसन्न होकर कहने लगी—आप फिर से कॉलेज में चले आइए।

विनोद ने ठण्ढी साँस छोड़कर कहा—पुष्पा देवी, जीवन के बोझिल दिनों को काटने के लिए कॉलेज की अपाठ्य पुस्तकों में कब तक सिर खपाता रहूँ ? मुझे तो विश्वास हो गया है कि जब तक मैं जीऊँगा, मुझे अपने लिए करने योग्य कुछ काम ढूँढ़ते रहना पड़ेगा।

मनोहर कहने लगा—तुम्हें निराशावादी नहीं होना चाहिए, विनोद। निराशावाद के चक्कर में पड़कर आज तक कितने नवयुवक, जिनमें प्रतिभा और नेजस्विता का सागर लहराया करता था, अकाल में ही ओले की तरह निःशेष होगये।

पुष्पा मन ही मन कुछ डर गयी। वह बोली—मनोहर भैया, आप इन्हें समझाते क्यों नहीं ?

मनोहर ने कहा—पुष्पा, मैं इन्हें अपने घर ले जाता हूँ, और यदि तुम्हारे मामा जी का आदेश हो तो तुम भी चलो। एक दो सप्ताह देहात की हवा खा लेने से······

विनोद ने एकाएक मानों नींद से चौंककर कहा—मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अब यहाँ टिक नहीं सकता।

विनोद ने कुछ ऐसी दृढ़ता के साथ अपने इस निश्चय को प्रकट किया कि पुष्पा घबराकर मनोहर की ओर देखने लगी और मनोहर पुष्पा की ओर देखने लगा। विनोद ने फिर कहा—केवल जीवित रहने ही के लिए जीवित रहना मैं पसन्द नहीं करूँगा। धर्म का त्याग कर डालना मेरे लिए सम्भव है, पर मुझसे कर्म का त्याग नहीं हो सकता। मुझे ऐसा बोध होता है कि मैं उस स्थान-भ्रष्ट तारा की तरह हूँ जिसे अब महा शून्य की छाती पर आग की केवल एक लकीर ही खींचकर सदा के लिए विलीन हो जाना है।

पुष्पा घबराई-सी शून्य की ओर देखने लगी। विनोद ने अपना कहना जारी रक्खा—मनोहर भैया, मैं चाहता हूँ कि एक बार पीड़ितों के बीच में जाऊँ और यदि मुझसे सम्भव हो तो यह जानने का प्रयत्न करूँ कि जिन विपत्तियों को हमारे परोक्षवादी दैवी कहा करते हैं सचमुच, उनकी जड़ परोक्षवाद के ही ऊपर है या नहीं।

पुष्पा ने कहा—आप क्या कह रहे हैं ? मैं नहीं समझ सकी।

विनोद कुछ गम्भीर होकर कहने लगा—यह तो सीधी-सी बात है। अकाल या बीमारियाँ या इन्हीं से मिलते-जुलते जो सङ्कट हमें घेर लेते हैं, वे दैवाधीन नहीं माने जा सकते, क्योंकि दैव नाम की किसी वस्तु को मेरी बुद्धि ग्रहण करने में असमर्थ है।

मनोहर ने कहा—सो कैसे ?

विनोद ने कहा—परसों अनाथालय वाले तुम्हारी इस कोठी पर पधारे थे। उनके साथ कुछ अनाथ बच्चे भी थे।

मैंने जब गहराई से विचार किया तो मुझे ऐसा लगा कि यह एक धोखाबाजी है। सेठ फलाने, सेठ फलाने, अमुक जमींदार, अमुक राजा साहब—इन सेठ-जमींदारों और राजा साहबों ने मिलकर जिस अनाथालय को खोल रक्खा है, वह इन्हीं सेठों, जमींदारों और राजाओं की असहनीय बर्बरता का परिणाम है। पहले तो ये अपनी जंगली कृतियों के द्वारा देश में अनाथों की बाढ़ ला देते हैं और फिर अनाथालय खोलकर अपने द्वारा बनाये अनाथों का प्रतिपालन करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे अनाथालयों में रहने वाले अनाथ बच्चे जब बड़े होते हैं तो अपने भक्षकों के प्रतिकूल खड्गहस्त न होकर उन्हें जीवन भर उनके आभार का भार लादे फिरते हैं।

पुष्पा सिहर उठी और कहने लगी—विनोद बाबू, ये विचार बहुत ही भयंकर हैं।

विनोद ने शान्त भाव से उत्तर दिया—देवी, तुम्हारे मनोहर बाबू ने एक कीमती चेक प्रदान करके अनाथालय की जब सहायता पहुँचाई तो मुझे ऐसा लगा कि एक धनी होने के नाते इन्हें भी ढोंग करना आता है।

मनोहर ने चौंककर कहा—क्या कहते हो तुम? मैं ढोंग करता हूँ?

विनोद ने हँसकर कहा—तो और मैं क्या समझूँ? तुम्हारी विशाल जमींदारी में घूमकर यदि कोई आँकड़े संग्रह करे तो तुहें पता चलेगा कि तुम्हारी सिलसिलेवार लूटों के के कारण न केवल अनाथों की ही संख्या बढ़ती जा रही है बल्कि विधवा, पुत्रहीन, रोगी और लँगड़े-लूले भी गाँव-गाँव में नजर आएँगे। अनाथालय खोलने से कहीं उत्तम है कि अनाथों का निर्माण करना तुम लोग बन्द कर दो।

मनोहर कहने लगा—तो तुम्हारे विचार से अवर्षण,

अतिवर्षण, महामारी, टिड्डी, पाला आदि-आदि उत्पातों का दायित्व सेठों, जमीदारों पर ही है ?

विनोद ने कहा--प्रकृति अंधी, गूँगी और बहरी है। यदि इस शक्तिशालिनी राक्षसी के प्रतिकूल लड़ने के सभी साधन जुटा लिए जायँ तो विनाश का जो रूप आज हम देखते हैं वह बहुत ही साधारण-सा जान पड़े, पर तुम्हारे जैसों को तो लूटने खसोटने और ऐश-मौज से ही कब फ़ुरसत मिलती है, जो इस ओर ध्यान दो ?

पुष्पा ने इस महा कटु और अनगढ़ बात-चीत के सिल-सिले को समाप्त कर देने की गरज से कहा—विनोद बाबू, जीवन के लिए सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है, न कि सिद्धान्तों के लिए जीवन का।'

विनोद ने सोचकर कहा—देखो पुष्पा, पहले हम प्रयत्न करके तरह-तरह की आदतों को अपने जीवन का अंग बनाते हैं, किन्तु उनके परिपुष्ट हो जाने के बाद हम अपनी ही आदतों के साँचे में खुद ढल जाते हैं।

मनोहर अचानक कुर्सी से उठता हुआ बोला—आप दोनों जमकर तत्व-चिंतन कीजिए और मैं चला।

पुष्पा ने कहा—आप कहाँ जा रहे हैं ?

मनोहर ने विनोद की ओर देखकर कहा—यदि विनोद बाबू यहाँ पर उपस्थित न होते तो मैं तुम्हें सब कुछ बतला देता। इनके भय से मुझ से सच्ची बात भी कही नहीं जाती, झूठ की तो राम जाने।

विनोद के होठों पर रूखी मुस्कुराहट झलक पड़ी। वह गम्भीर बना बैठा रहा। पुष्पा ने बच्चों की तरह उत्सुकता प्रकट करके पूछा—बतलाओ न भैया, मैं जो पूछ रही हूँ ?

मनोहर ने कहा—वीणा देवी के यहाँ आज संगीत-गोष्ठी जमेगी। मुझे भी कृपापूर्ण निमन्त्रण मिला है।

विनोद कहने लगा—क्यों जी, मैं क्या साहित्य-संगीत-कला का शत्रु हूं? मैं तो स्वयं संगीत को पसन्द करता हूँ।

पुष्पा ने कहा—तो विनोद बाबू को भी साथ ले जाना अच्छा होगा।

विनोद ने अपने कपड़ों की ओर देखकर कहा—बड़े लोगों के दरबार में जाने लायक न तो अब मैं ही रहा और न ये मेरे कपड़े रहे।

मनोहर थका हुआ-सा कुर्सी पर बैठ गया और दुख भरे स्वर में बोला—विनोद, तुम ऐसी बात कहकर मुझे मर्माहत न करो। तुम्हारे पास कीमती कपड़ों का एक अम्बार है। यदि तुम चाहो तो उनमें से कुछ को ही बेचकर डॉ० मजुमदार (वीणा के पिता) की सारी सम्पत्ति को खरीद सकते हो।

पुष्पा की आँखों में स्नेहपूर्ण आँसू भर आये। विनोद दीर्घ निःश्वास त्याग कर सामने पड़ी हुई एक मोटी-सी पुस्तक के पेज उलटने लगा। कोठी के सामने जो हरा-भरा मैदान था उस पर संध्या की उतरती हुई धूप खेल रही थी और सामने की सड़क पर दो-तीन बैलगाड़ियाँ मन्द-मन्थर गति से जारही थीं। कंधे पर फावड़े और सर पर खाली डलिया रक्खे हुए कुछ मजदूर दिन भर खून और पानी एक कर लेने के बाद अपने-अपने घरों की ओर मन में विविध लालसा संजोये चले जा रहे थे।

---

(१५)

हवा को मुट्ठियों में बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता— विनोद को भी मनोहर अपने स्नेह के शत्‌शत् रंगीन डोरों में बाँध कर नहीं रख सका। पुष्पा के आँसू और मनोहर के दीर्घश्वास विनोद के पथ में बाधा नहीं पहुँचा सके और वह एक दिन दामन झाड़ कर उठ खड़ा हुआ। हैजा-पीड़ित क्षेत्रों की ओर जाने की उसने जो तैयारी की थी उस तैयारी को तैयारी न कहकर आत्म-वलिदान कहा जा सकता है। न पास में दवा और न कोई साथी। साधारण-सा सामान और कुछ किताबें। विनोद के बहुत न करते रहने पर भी अपना 'पर्स' मनोहर ने उसकी पॉकेट में ठूँस दिया, जिसमें नोटों का एक कीमती बंडल था। विनोद गंगा तट पर आया, स्टीमर पर बैठकर उस पार के तट को देखने लगा—उसने लौट कर उस तट को देखना भी उचित नहीं समझा जिस तट का वह त्याग कर रहा था। मनोहर और पुष्पा ने जब वाष्परुद्ध कंठ से विदाई माँगी तो विनोद ने कहा—"हमारा स्नेह सम्बन्ध युग-युग बना रहे—यही मेरी कामना है। यदि पता जी आजायँ तो उन्हें मेरा प्रणाम कह देंगे, इससे अधिक मैं कुछ भी नहीं चाहता।"

विनोद की उखड़ी-उखड़ी बातों से मनोहर का हृदय रो उठा। वह धैर्य धारण करके बोला—विनोद, तुम्हारी बातें निराशा से भरी हुई हैं—मैं घबरा गया हूँ। पुष्पा भी कुछ कहना चाहती थी पर एक बार उसके होठ हिल कर एक दूसरे के साथ चिपक गये। वह भीतर ही भीतर मानो अकुला रही थी।

विनोद कहने लगा—भाई, मैं नहीं समझता कि कौन किस

ओर मुझे घसीटे लिये जारहा है। मैं दया का पात्र हूँ—मुझ पर नाराज न होना—यही मेरी अन्तिम साध है, तुम दोनों से। यात्रियों की धींगा-धींगी बढ़ गई और स्टीमर का भारी भोंपू भी हठात् बज उठा।

मनोहर ने हाथ जोड़ कर कहा—परमात्मा तुम्हारी रक्षा करें। विनोद, मैं विनय करूँगा कि तुम शीघ्र लौटना। इस समय मेरा हृदय······।

विनोद ने कहा—भविष्य की बात मैं क्या जानूँ, पर भाई, न जाने क्यों अपने आप से ऊब उठा हूँ, तंग आगया हूँ। मेरा जी कहीं भी नहीं लगता। दिन होता है तो ऊब-ऊब कर रात की प्रतीक्षा करता हूँ और रात होती है तो दिन के लिये रोता हूँ। मैं एक पथ भूला हुआ पथिक हूँ—चल रहा हूँ पर पता नहीं, सही रास्ते पर हूँ या गलत पर।

पुष्पा दुःख भरे स्वर में बोली—यदि मैं स्वतन्त्र होती तो आपका साथ अवश्य देती—मन दौड़ता है, पर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं। ऐसी ही अवस्था में पड़कर मनुष्य पागल हो जाता है।

विनोद कुछ कहने जा रहा था। पर उसका मन कुछ इतना बोझिल हो गया था कि वह बोल न सका। जो यात्री स्टीमर पर आ गये थे, वे एक बार काफी व्यस्तता प्रकट करके स्थिर हो गये। एक प्रकार से स्टीमर पर शान्ति ही छा गयी। मनोहर ने पुष्पा से कहा—पुष्पा, अब हमें चलना चाहिये। विश्वास रक्खो, विनोद हमारा है और वह हमें छोड़ कर कहीं भी नहीं रह सकता।

जिस समय मनोहर अपने स्नेह के दावों को पेश कर रहा था उसी समय बहुत दूर पर बैठी हुई मनोरमा अपने आप से

कह रही थी—विनोद मेरा है औरवह मुझे छोड़कर कहीं भी नहीं रह सकता।

जिस समय मनोरमा अपने हृदय के इस ज्वलन्त उद्‌गार को अपने ही सामने उपस्थित कर रही थी उसी समय भविष्य के परदे में बैठकर भवितव्यता कह रही थी—विनोद मेरा है; वह मुझे छोड़कर कहीं भी नहीं रह सकता।

किन्तु पुष्पा, वह गरीबनी पुष्पा जो जीवन भर केवल निराशा और आत्म-पीड़न से ही लड़ती-झगड़ती रही, क्या सोचती, क्या बोलती, क्या दावे पेश करती। जिसका सारा जीवन ही विविध लालसाओं की करुणोत्पादक समाधियों से भरा हुआ है, जिसकी लालसाएँ कभी भी सफल न होने के कारण भिखारिणी की तरह अब उसी के सामने खड़ी होकर अपने फटे आँचल फैलाया करती है, वह पुष्पा किस बल पर, किस आशा पर, किस देवता के भरोसे कुछ भी दावा पेश करने का साहस करती। सिर झुकाये और खोयी-सी वह अभागिनी भग्न-मनोरथा नवयुवती स्टीमर की सीढ़ियों को पार करती हुई अपने मूक भविष्य की तरह नीरव साथी मनोहर के साथ घाट पर चली आयी। धीरे-धीरे स्टीमर खुला और गंगा की शान्त छाती पर विक्षोभ उत्पन्न करता हुआ उस पार की ओर चल पड़ा। जब स्टीमर काफी दूर चला गया तो पुष्पा ने मनोहर का ध्यान भंग किया जो पत्थर की मूर्त्ति की तरह खड़ा-खड़ा एकटक निःशब्द जाने वाले स्टीमर की ओर देख रहा था। चौंक कर मनोहर ने कहा—बहन, वह बड़ा निष्ठुर है, पत्थर से भी अधिक और हमारे भाग्य से भी अधिक। मैं नहीं कह सकता एकाएक उसमें इतनी निराशा, आत्म-विसर्जन कर डालने की इतनी आकुल और व्यग्र भावना क्यों पैदा हो गयी ?

पुष्पा किसी भोली बच्ची की तरह भोलेपन के साथ बोली—मनोहर भैया, चलो। विधाता ने कलम से जो कुछ लिख डाला है, उसे हम कुल्हाड़े की चोटों से नहीं काट सकते। विनोद बाबू कितने महान हैं।

जब दोनों कोठी पर गये तो वहाँ उन्होंने मि० चौधरी के साथ वीणा को देखा। पुष्पा और मनोहर दोनों का हृदय बेहद भारी हो रहा था। किन्तु शिष्टाचार के नाते स्नेह-सम्भाषण के बाद मनोहर ने वीणा से पूछा—बहुत दिनों पर इधर आपका आना हुआ।

मि० चौधरी एक दुर्गन्धपूर्ण जम्हाई लेकर इस तरह बोल उठे मानों वीणा ने अपनी ओर से बातचीत करने का इन्हें वकालतनामा दे रक्खा हो—मनोहर बाबू, हम आपके मित्र महोदय से साक्षात्कार करने आये थे।

मनोहर ने दीर्घ निःश्वास त्याग कर उत्तर दिया—हम उन्हें अभी-अभी विदा करके आ रहे हैं।

जब तक वीणा कुछ बोलने की चेष्टा करे तब तक चौधरी फिर बोल उठे- क्या वे घर गये ?

वीणा बोली—चाचा, आखिर मैं क्यों आयी ? मुझे भी तो बोलने का अवसर मिलना चाहिये ?

चौधरी इसलिए बहुत ही लज्जित और खिन्न हुए कि दूसरों के सामने वीणा ने उन्हें चाचा कह दिया। चौधरी जल्दी-जल्दी कहने लगे—हाँ-हाँ, तुम्हीं बोलो न। मैं तो यों ही·····हाँ उत्सुकता ही ऐसी थी। बोलो।

मन की गहरी उदासी को क्षण भर के लिए भूल कर पुष्पा और मनोहर—दोनों मुस्करा पड़े। वीणा ने कहा—खैर, विनोद बाबू चले गये तो क्या आप तो हैं। बात यह है कि मेरे यहाँ एक नाटक होने वाला है—

मनोहर ने कहा—उसमें यदि राक्षस पात्र के लिए स्थान हो तो आप मुझे दे सकती हैं।

चौधरी अपने को रोक नहीं सके और दोनों हाथ नचाते हुए कहने लगे—नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

मनोहर ने गम्भीर होकर कहा—शायद आपने अपने को पहले ही उसके लिए ऑफर (Offer) कर दिया है। मैं आपको पदच्युत नहीं करूँगा।

चौधरी एकबारगी ही चीख कर बोले—आप यह क्या कह रहे हैं मनोहर बाबू। जूलियस सीजर का अभिनय होने वाला है।

मनोहर ने कहा—तो मुझे क्षमा कर दीजिये। अभी-अभी जूलियस सीजर का सच्चा अभिनय देख चुका हूँ। अब साहस नहीं होता कि फिर बार-बार दुर्भाग्य को लौटाकर उससे आँख-मिचौनी खेलूँ।

वीणा जो अब तक मोम की निर्जीव पुतली की तरह मनोहर की कुर्सी के पीछे खड़ी रहने वाली पुष्पा के निर्जीव मुख की ओर देख रही थी, बोली—आज मैं अपनी सखी-रानी को बहुत ही खोयी-खोयी-सी देख रही हूँ।

मनोहर ने दीर्घ श्वास त्याग कर कहा—वीणा देवि,

देखा, परिचय, स्नेह, मिलन
फिर भोगी विरह व्यथा,
मानव हृदय, यही है
तेरी करुणाभरी कथा ;

पुष्पा अचानक दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँक कर बगल वाले कमरे में बिजली की तरह घुस गयी। चौधरी को पुष्पा का इस तरह चला जाना बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगा क्योंकि

वह अपनी आँखों में यथा साध्य रस भर कर उसे लगातार ही देख रहे थे।

पुष्पा के जाने के बाद चौधरी को मनोहर का सुन्दर और कीमती सामानों से भरा हुआ कमरा उस घर की तरह ही दिखलाई पड़ने लगा जिस घर को लूटपाट कर डकैत तुरत ही चले गये हों। चौधरी का चित्त उचट गया। वह बोले—आपने क्या कह कर मिस षुष्पा को इतना खेद पहुँचाया? जरा अँग्रेजी में अपनी उन पंक्तियों का अनुवाद करके मुझे सुनाइये। मैं आपकी भाषा ठीक-ठीक नहीं समझ सकता।

मनोहर कुछ झुँझलाया-सा होकर बोला—महाशय जी, आपने भी एक ही कही। यदि किसी सच्ची वियोगिनी की ठंढी आह को रेकार्ड (Record) में भर कर ग्रामोफोन पर कोई बजावे तो कैसा लगेगा, जरा अनुभव तो कीजिए। इसी तरह आप मुझसे उन पंक्तियों का अनुवाद खोज रहे हैं जो अपने भीतर मानव-हृदय की एक करुण कहानी छिपाये हुए है।

वीणा उसी जाति की थी जिस जाति की पुष्पा। पुष्पा के मानसिक महाप्रलय की हलचलों को वीणा के हृदय ने ठीक-ठीक अनुभव कर लिया। वह कुछ उदास-सी होकर कहने लगी—मनोहर बाबू हमारे चौधरी चाचा एक वकील हैं। अतएव दुनियाँ की प्रत्येक बात को आप पेनल कोड या लॉ ऑफ एविडेंस (Law of Evidence) के मापदण्ड से ही मापते हैं।

चौधरी को यह लांछन बुरी तरह अखरा। वह बोले—नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं भी कभी कविताएँ लिखा करता था।

मनोहर यह बोलता हुआ उठ खड़ा हुआ कि यदि आप यह कहते कि मैं कभी जीवित था तो शायद मुझे आपकी बातों

पर पर्याप्त विश्वास हो जाता। कवि अतीत नहीं बना सकता, वह तो सदा वर्तमान ही रहता है।

वीणा जब लौट चली और मनोहर ने नाटक में भाग लेने से छिपे शब्दों में इनकार कर दिया तो रास्ते में चौधरी बोले—विनोद का ढंग तो मुझे कभी भी अच्छा नहीं लगा और यह मनोहर, यह भी पक्का निहलिस्ट है।

वीणा ने कहा—चाचा, आप पर निहलिज्म का भूत चढ़ बैठा है। मैं कहती हूँ आप समझदारी से अब काम लिया कीजिए। इस उम्र में आपसे दुनिया समझदारी की ही आशा रखती है।

चौधरी चौंक कर बोले – देखो मिस पुष्पा, तुम दूसरों के सामने भी मुझे अपदस्थ करने में बाज़ नहीं आती।

वीणा बोली—सो कैसे ? मैं तो घर-बाहर सर्वत्र आपका आदर करती हूँ।

चौधरी मानों कराह कर कहने लगे—तुमने मनोहर और पुष्पा के सामने मुझे चाचा कह दिया। मैं कहता हूँ यह सम्बोधन बिलकुल मध्य-युग का है—जंगली।

वीणा झुंझला कर बोली—तो मैं क्या कहूँ डियर, प्रियतम, प्राणधन, हृदयेश ?

चौधरी मनही मन भयाकुल हो गये और बोले—जाने दो, इस तर्क को हम यहीं समाप्त कर दें, किन्तु एक बात यह ध्यान में रक्खा करो कि इन खतरनाक सत्तूखोर हिन्दुस्तानियों से अधिक मेलजोल रखना हमारे लिए अपमान है।

वीणा बोली—आज मुझे भी ऐसा ही अनुभव हुआ। मनोहर का मैं आदर करती थी, पर मुझे पता चला कि वह बङ्गाली नहीं, सोलहो आने हिन्दुस्तानी मात्र है।

पुष्पा को मनोहर के सम्पर्क में बराबर देख कर वीणा

मन-ही-मन झुँझलाया करती थी, साथ ही यह गलतफहमी भी उसे विकल किये डालती थी कि मनोहर एक बङ्गाली समझ कर उसके प्रति बराबर उपेक्षा के भाव प्रकट करता है, यद्यपि बात ऐसी न थी। वीणा के जाने के बाद पुष्पा से मनोहर ने कहा—बहिन, मैं समझता हूँ कि आज का दिन तुम्हारे लिए बहुत ही पीड़ा-जनक है और मेरे लिए भी। विनोद एक विचित्र प्रकृति का मनुष्य है। मैं उसे समझने की जितनी चेष्टा करता हूँ, वह मेरे लिए उतना ही दुरूह होता चला जा रहा है।

एक बार कृतज्ञता भरी आँखों से मनोहर के शान्त, गम्भीर चेहरे की ओर देख कर पुष्पा ने पूर्ववत सिर झुका लिया। मनोहर ने फिर कहा—मैं तुम्हें एक पत्र पढ़ने को देता हूँ। मुझे विश्वास है कि इसे तुम धैर्यपूर्वक पढ़ोगी। इसी पत्र ने विनोद को हमसे छीनकर दूर फेंक दिया।

मनोहर ने मेज़ की दराज से मनोरमा का वह पत्र निकाल कर पुष्पा के आगे रख दिया जो उसे विनोद के पुराने और गन्दे डेरे में प्राप्त हुआ था। आकुल दृष्टि से पूरी चिट्ठी को पढ़ कर पुष्पा घबराई-सी बोली—भैया, यह मनोरमा कौन है ? मनोहर आँखें बन्द करके कुर्सी की पीठ पर पूरा भार देकर बोला—विनोद की भाभी।

पुष्पा ने पूछा—तुम्हें कैसे मालूम है ?

मनोहर कहने लगा—विनोद से मेरा बन्धुत्व पुराना है। मैं उसके घर तक कई बार आया-गया हूँ।

पुष्पा पत्र को अपने दोनों हाथों से कस कर पकड़ती हुई बोली -मनोरमा, धिक्कार।

मनोहर ने हाथ मल कर कहा—हाय विनोद।

(१६)

विनोद स्टीमर से उतर कर जब रेलवे स्टेशन पर पहुँचा तो उसने देखा, वह ट्रेन भी खड़ी है, जिस पर सवार होकर वह घर जाया करता था। ट्रेन को देखते ही उसकी आँखों के सामने स्नेहमयी माता की पावन मूर्त्ति झिलमिला उठी। इसके बाद अपने पूजारत पिता और अग्रज को उसने देखा। उसका हृदय करुणा-मिश्रित स्नेह से लबालब भर गया। गाँव का परिचित आकाश, गाँव के परिचित तारे, गाँव के परिचित सूर्य और चाँद, गाँव की सुखदायिनी हवा और गाँव के सुन्दर खेत उसकी आँखों के सामने चित्र के झरनों की तरह जब वेग से नाच उठे तो उसका मन बहुत ही विकल हो उठा। इसके बाद यौवन मदमत्ता, रस-विह्वलाक्षी, अलस अँगड़ाई लेती हुई मनोरमा जब उसकी आँखों के सामने स्पष्ट हो गयी तो उसने आकुल होकर अपने दोनों हाथों से आँखों को बन्द कर लिया। विनोद जिस ट्रेन से जाने वाला था, वह अभी नहीं आयी थी और अभी उसे काफी अरसे तक प्लेटफार्म पर ही ठहरना पड़ता। किसी मंत्राकर्षित निर्जीव पुतले की तरह विनोद घर जाने वाली गाड़ी पर जा बैठा, यद्यपि उसका टिकट विरुद्ध दिशा की ओर जाने का था। विनोद ने अपने भीतर के भयंकर भूचाल के कारण अपने विचारों की सतह को बदलते हुए देखा। उसने देखा कि मनोरमा सामने खड़ी रो रही है और कह रही है कि मैंने तो कोई पाप नहीं किया। यदि प्यार करना इतना बड़ा अपराध है, इतना बड़ा पाप है, इतनी बड़ी विडम्बना है, इतना बड़ा मनस्ताप है तो एक बार तुम आकर मुझे धिक्कार जाओ ताकि मैं मलाल के भार से मुक्त हो जाऊँ और सुख से मरूँ।

विनोद चीख उठा—ऐसा नहीं हो सकता। पाप दुर्बलों को सताता है और प्रेम दुर्बल व्यक्ति कर ही नहीं सकता।

विनोद के बगल में एक सेठ जी बैठे थे जो दत्तचित्त होकर भोजन-क्रिया में निमग्न थे। उनका नौकर, जिसने सुबह को चूड़ा या इसी तरह का किसी कदर्य अन्न को खाया था, अपने मुँह की राल को बलपूर्वक रोके लगातार रसगुल्ले, लड्डू, फूली हुई कचौरियाँ सेठ जी की थाली पर परोस रहा था और वे बिना किसी व्याघात के सुख-पूर्वक उन सुपाच्य और स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थों को उदरस्थ करते जा रहे थे।

विनोद की असंगत बातें सुनकर सेठ जी ने उसे पागल समझा। वे बोले – बाबू, दूसरी गाड़ी में बैठो।

विनोद चौंका। यह उसके लिए मानों ईश्वरीय आदेश था। वह उस डब्बे से निकल कर फिर प्लैटफॉर्म पर आ गया और दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा में एक बेंच पर बैठ गया। सीटी देकर उसके घर के स्टेशन पर जानेवाली गाड़ी चली गयी और गाड़ी के पीछे की लाल रोशनी छोटी होते-होते दृष्टि-पथ से ओझल हो गयी। विनोद के हृदय से एक दबी हुई आह निकली—जिसका ज्ञान अन्यमनस्क विनोद को न था, किन्तु चींटियों के भी पैरों की आवाज सुननेवाले के कानों ने उस ठंढी आह की आवाज को अच्छी तरह सुना और सुनकर शायद मुस्करा भी दिया।

फागुन का महीना था और बसन्त की आलस्य-भरी हवा डोल रही थी। शान्त गगन से चन्द्रमा अपनी मदोन्मत्तकारिणी ज्योत्सना बरसा रहा था। प्लेटफॉर्म का कोलाहल समाप्त हो चुका था; क्योंकि तुरत न तो कोई ट्रेन आनेवाली थी और न जानेवाली। एक नवयुवक ध्यानमग्न विनोद की बगल में बैठ गया और बोला—विनोद बाबू, आप मुझे पहचानते हैं,

नमस्कार ? बिनोद ने चौंककर इस अनाहूत परिचित की ओर देखा। इस व्यक्ति का नाम था गदाधर जो कॉलेज से निकाल दिया गया था, क्योंकि इसके चलते पुलिस को बार-बार कालेज में आते रहने का कष्ट उठाना पड़ता था। गदाधर एक बङ्गाली छोकरा था और संसार भर की राजनीति के उतार-चढ़ाव पर बहस कर सकता था। वह, भारत के जितने साधु-संप्रदाय हैं, प्रत्येक की शिष्यता बारी-बारी से कर चुका था। वह कुछ महीनों तक सिक्ख बना रहा। फिर बैरागियों के अखाड़े में जाकर बाकायदा भर्ती हो गया। इसके बाद रामानुज, लोलिम्बकाचार्य, शंकराचार्य, नानकपंथी, दादूपंथी आदि सभी पंथों के बारी-बारी से टुकड़े तोड़ लेने के बाद अन्त में वह शून्यपंथी बनकर स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण कर रहा था। थाने, पुलिस-हवालात और भिन्न-भिन्न प्रान्तों की छोटी-बड़ी जेलों को भी उसने अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया था। गदाधर कॉलेज में पढ़ते समय अपने अद्भुत विचारों के कारण विशेष रूप से कुख्यात हो चुका था। वह उस बदनाम मदिरा-प्रेमी की तरह था जो शराब तो यदा-कदा पीता हो, किन्तु अपने सारे कपड़ों को शराब से ही भिगो कर पहिनता हो। इस तरह दूसरों के मन पर यह विश्वास जमाने में उसे आनन्द होता हो कि वह रात-दिन शराब के नशे में गर्क रहता है। गदाधर के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात थी। कहने का तात्पर्य यह कि गदाधर 'बद' कम और 'बदनाम' अधिक था और उसे अपनी बदनामी को कायम रखने और बढ़ाने में पर्याप्त आनन्द मिलता था। घर-द्वार छोड़कर देशोद्धार के नाम पर आवारागर्दी करने की जो चाल चल पड़ी है, उस चाल के साथ कदम से कदम मिलाता हुआ गदाधर सारे भारत की खाक छान चुका था।

गदाधर बोला—विनोद बाबू, आपने कालेज छोड़कर

अच्छा ही किया। इस प्रकार गुलामी के अशेष बंधन को छिन्न-कर डालना पहली विजय है।

किसी अज्ञात देवता के उद्देश्य से हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ गदाधर गद्गद कण्ठ से फिर बोला—माँ, रिपुदल विदारिणीम्, दशप्रहरणधारिणीम्, हमारे प्रत्येक नवयुवक को तू ऐसा ही ओज और तेज भर दे।

'माँ' शब्द सुनते ही विनोद का सारा शरीर किसी अज्ञात पुलक से पुलकित हो उठा। उसने मन ही मन दुहराया—माँ, माँ, माँ, माँ। आह! यह सम्बोधन कितना पवित्र और बल-दायक है। विनोद की आँखों के सामने उसकी स्नेहमयी जननी का सौम्य रूप स्पष्ट हो गया। उसकी आँखें भर आयीं, हृदय उमड़ आया। गदाधर इधर-उधर देख कर धीरे-से बोला—विनोद, मेरे बहुत दिनों के बिछुड़े हुए बन्धु विनोद, आओ एक बार माँ के विशाल अंचल की छाया में चलो—जहाँ जरा, मरण और भय नहीं है ो बन्धु, मृत्यु को जीत कर हमारे साथ तुम भी मृत्युञ्जय बनो।

इतनी देर के बाद विनोद का कण्ठ फूटा। वह बोला—भाई, वह स्थान कहाँ है।

गदाधर आँखों में आँसू भर कर और दोनों हाथ छाती पर रख कर कहने लगा—वह स्थान, वह स्थान जहाँ निरपराधों के आँसू बरसाये जाते हों, जहाँ माताओं और बहनों की लाज और सुहागिनों का सुहाग लूटा जाता हो, जहाँ दुधमुँहे बच्चों का दूध छीन कर कुत्तों को पिलाया जाता हो, जहाँ—जहाँ—······।

विनोद व्यग्र होकर बोला– गदाधर, मैं तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ। ऐसी बातें न बोलो। मैं पागल हो जाऊँगा।

गदाधर—पागल? तुम पागल हो जाओगे—माता का यही

आदेश है कि देश के प्रत्येक नवयुवक को पागल होना चाहिए, बिलकुल-पागल, शिवाजी की तरह पागल, प्रताप की तरह पागल, मेजिनी की तरह पागल, लेनिन की तरह पागल, माता का यही आदेश, यही हुक्म है, यही उसकी इच्छा है। विनोद, तुम्हें माँ का, करुणामयी जननी का आदेश पालन करना ही पड़ेगा—मैं जानता हूँ, उसने ही तुम्हें कॉलेज से हटाया, उसने ही तुम्हें घर से हटाया और तुम जान लो वह धीरे-धीरे तुम्हें अपनी गोद की ओर खींच रही है।

इसके बाद गदाधर ने गद्गद कण्ठ से बेसुरे स्वर में गाना शुरू किया—

के बोले माँ तुमी अबले
बहु-वल धारिणीम्
रिपु-दल-विदारिणीम्
मातरम्
बन्दे मातरम्।

विनोद अवाक् भाव से भावोन्मत्त गदाधर की ओर देख रहा था। उसे आश्चर्य हुआ कि यह फटे कपड़ों वाला जिसके पास सामान के नाम पर महज़ एक झोला मात्र है, कितना प्रसन्न है। इसकी प्रसन्नता, इसका उल्लास, इसकी भाव-विह्वलता किसी भी वाह्य साधन के द्वारा नहीं है। जब आत्मा जागृत होकर सहस्र-दल कमल की तरह खिल उठती है तो तभी ऐसी निर्मल चाँदनी-सी प्रसन्नता सम्भव हो सकती है। विनोद अपनी खिन्नता से गदाधर की उन्मुक्त प्रसन्नता की तुलना करके भीतर ही भीतर लज्जित हो उठा। सचमुच जिसने अपना समस्त भार उतार फेंका हो, जिसने संग्रह और संग्रहीत वस्तुओं की सुरक्षा की चिन्ता से अपने को दूर हटा दिया हो, वही चाँद की तरह चमक सकता है, चाँदनी की तरह खिल सकता है

और पवन की तरह मुक्ति का आनन्द उपलब्ध करता हुआ अजस्र धारा प्रपात की तरह खिल-खिलाकर हँस सकता है, आनन्द के फूल बिखेर सकता है। विनोद ने कहा—भाई गदाधर, जी चाहता है कि तुम्हारी प्रसन्नता चुरा लूँ, तुम्हारे आनन्द को लूट लूँ।

विनोद की ओर दोनों हाथ फैला कर रोनी आवाज में नकियाता हुआ गदाधर ने कहा—यह अधम गदाधर तुम्हारा है। माँ के आदेश से मैंने समस्त भौतिक सुख-साधनों का त्याग कर दिया है और बदले में माता ने मुझे सारा संसार सौंप दिया। विनोद, मेरी आत्मा के प्रतीक विनोद, तुम अपने को पहचानो और आनन्द के इस अघट खजाने की चाभी प्राप्त करके अमरता को वरण करो। मैं तुम्हें महीनों से खोज रहा हूँ—माँ का आदेश कौन टाल सकता है।

विनोद ने रहस्यवाद के इस चक्रव्यूह में घुस कर अपने आपको एक प्रकार से खो दिया। बातों ही बातों में गदाधर को यह पता चल गया कि विनोद की यह यात्रा निरुद्देश्य है। वह रोग-पीड़ित गाँवों में घूम कर तबाही के मूल कारणों का निष्पक्ष अध्ययन करने जा रहा है। सब कुछ जान लेने के बाद गदाधर ने कहा—यह भी माता की ही कृपा है। उसने मुझे भी उन्हीं हतभागों की सेवा करने के निमित्त भेजा है और उसीने तुमसे मेरा यहाँ साक्षात्कार करवा दिया। एक से दो भले। अब मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा। माता की इच्छाओं का पता हमारे जैसे अधमाधम मूढ़ जीव नहीं पा सकते।

गदाधर ने विनोद के कालेज में आने के दो तीन वर्ष पहले ही 'सर्वहारा' का व्रत लिया था, पर वह कालेज में आता-जाता रहता था और विनोद से उसकी कुछ निकटता भी थी। मनोहर विनोद को अच्छी तरह समझाता था कि वह ऐसे लोगों की

छाया से भी दूर रहे पर विनोद अपनी ही प्रकृति के कारण सुनी अनसुनी कर देता था। यद्यपि गदाधर का पथ विनोद को नहीं रुचता था पर मन ही मन वह गदाधर की स्वतन्त्रता और प्रसन्नता को प्यार करता था। उस दिन स्टेशन पर अचानक जब गदाधर ने उसे काफी उत्तेजित कर दिया और उकसाया तो वह द्विविधा में पड़ गया।

विनोद ने कहा—"गदाधर बाबू"—!

गदाधर ने अपने कम्पित करों से विनोद का हाथ पकड़ कर कहा—हैं···हैं यह कैसा दूर फेंकनेवाला सम्बोधन है—माँ का आदेश है कि हम सभी सर्वहारा भाई-भाई हैं, यह युग समता का है। मुझे 'गदाधर' कहो, मैं तुमसे बहुत बड़ा हूँ; 'भैया' भी कह सकते हो।

विनोद ने कुछ लज्जित होकर कहा—क्षमा करो भैया, अब भूल नहीं होगी—यह तो पुराना संस्कार मात्र है जो हम एक दूसरे को एक दूसरे से बड़ा छोटा मान लेते हैं।

"ठीक है, बिल्कुल ठीक"—सिर हिलाकर गदाधर कहने लगा—तुमने महान् कामरेड लेनिन का साहित्य तो पढ़ा ही होगा? कामरेड ने अपना सारा जीवन ही समता के प्रचार में उत्सर्ग कर दिया। हमें भी उनका पदांकानुसरण करना चाहिये। ये 'बुर्जुआ'······हूँ?'

एक बार दाँत पीसकर अपनी दोनों बँधी हुई मुट्ठियों को हवा में हिलाते हुए गदाधर ने किसी कल्पित 'बुर्जुआ' की नाक पर घूँसा मारने का ऐसा नाट्य किया कि विनोद अकचका कर इधर-उधर देखने लगा। इतने ही में वह ट्रेन आगई जिस पर उसे जाना था।

(१७)

मनोरमा ने अपने जीवन को इतना अधिक भारी बना लिया कि स्वयं उसके लिए वह भार हो गया। प्रमोद प्रयत्न करता कि वह अपने करुण-जल से धोकर अपनी जीवन सहचरी को फिर से ग्रहण करे। किन्तु मृग-मरीचिका की तरह मनोरमा सदा उससे दूर ही नजर आती, वह जितना आगे बढ़ते जाता। हरिनन्दन बाबू की अनुभवी आँखें यह देख रही थीं कि उनकी फुलवारी सूखती जा रही है और उसकी सारी लुनाई बिलकुल निःशेष हो जाने के निकट पहुँच गयी है। पर वे अनन्योपाय से केवल हाथ मलते और रोते हुए अपने गिरि-धर गोपाल के चरणों पर सिर पटका करते। उन्होंने विनोद की खोज करने का एक-दो बार असफल प्रयत्न भी किया। विनोद के प्रति उनके हृदय में जो गुप्त क्षोभ कभी उत्पन्न हो गया था, आकुलता के रूप में परिणत हो गया। सन्तान-स्नेह ने विरक्ति पर विजय पायी। कमला के आकुल हृदय ने भी विनोद को खोजना प्रारम्भ किया। दिन, सप्ताह, सप्ताह मास और मास वर्ष बन कर जब समाप्त हो गया तो हरिनन्दन बाबू, प्रमोद और कमला के मामने सारी सच्चाई स्पष्ट हो गयी और उनकी दृष्टि के सामने विनोद की मूर्त्ति अपनी पूर्ण पवित्रता के साथ स्पष्ट हो गयी। विनोद का जितना कुछ अपराध था, वह सब मनोरमा के सिर पर आप-से-आप जा कर लद गया। काम से छुट्टी पाकर कमला प्रायः रोया करती और मनोरमा को स्पष्ट शब्दों में कोसा करती। एक दिन बेतरह ऊब कर मनोरमा ने अपना मुँह खोला। वह बोली—मुझे इस तरह रात-दिन क्यों कोसा जा रहा है? क्या मैंने ही छोटे बाबू को बनवास दिया या आप लोगों ने।

कमला अपना सिर पीट कर बोली—कलंकिनी ! तू ने ही अमृत के प्याले में विष घोला है। मेरा विनोद दूध का धोया हुआ है। तेरे ही चलते उसने अपने को लुटा डाला।

सच्चाई की इस करारी चोट को मनोरमा नहीं सह सकी। उसमें इतना साहस न था कि वह अपनी सास की इस ध्वंसक लांछन का प्रतिवाद करे। वह चुपचाप जब अपने कमरे में गयी तो उसने वहाँ अपने पति को शान्त भाव से बैठे देखा। मनोरमा आपादमस्तक ओस-कण की तरह काँप उठी। प्रमोद स्नेह-पूर्ण स्वर में बोला—माता जी ने तुम्हें जो कुछ कहा है, वह मैं सुन चुका हूँ। मैं तुम्हें अपराधिनी स्वीकार तो करता था, पर अब मेरा हृदय इसलिए व्याकुल है कि स्वयं तुम अपने आपको अपराधिनी स्वीकार करो। जिस दिन तुम्हारे भीतर सत्य रूपी नारायण का उदय होगा, तुम्हारे हृदय का सारा कलमश मेरी दृष्टि से धुल जायगा।

इतना कहकर प्रमोद ने स्नेहपूर्ण आँखों से मनोरमा की ओर देखा जो सर झुकाये दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी थी। प्रमोद ने फिर कहा—देखो मनोरमा, प्रभु बहुत ही क्षमाशील है। क्योंकि उसे दुनिया करुणासिन्धु के नाम से पुकारती है। जिसने अहिल्या के पातक को पातक नहीं रहने दिया, वह तुम्हारे इस स्वल्प अपराध को नष्ट कर डालेगा। आवश्यकता इस बात की है कि तुम अपनी आँखों के जल से अपने हृदय को धो डालो।

मनोरमा ने जब उत्तर नहीं दिया तो प्रमोद दीर्घ निःश्वास त्याग कर उठता हुआ बोला—मैं तुमसे प्रार्थना करूँगा कि समय के रहते समझदारी से काम लो।

इतना कहकर प्रमोद सिर झुकाये जब कमरे से बाहर हो गया तो मनोरमा आकर खाट पर बैठ गयी और धीरे-से

बोली—मैं पापिनी हूँ, मैने पाप किया है—नहीं, मैंने जो कुछ भी किया है, उचित ही किया है।

फागुन का अन्त हो रहा था और दूर-दूर से होली की मदमाती तान सुन पड़ रही थी। मनोरमा खाट से उठी और कमरे में व्यग्र भाव से इधर से उधर टहलने लगी। रह-रह कर विनोद का ध्यान हो आता था। खुली हुई खिड़कियों से जो अलसित बयार आ रही थी, उसने मनोरमा को और भी अलसा दिया।

और प्रमोद—?

प्रमोद अपने हृदय का भार लादे चुपचाप जाकर गिरिधर गोपाल के सामने बैठ गया। उसने एकटक मूर्त्ति को देखना आरम्भ किया। मन की सारी वृत्तियों की हलचलें जब रुक गयीं तो उसे ऐसा लगा कि वह किसी अनिर्वचनीय आनन्द के सागर में डूब उतरा रहा है। आँखों से अविरल अश्रु-प्रवाह जारी हो गया। कुछ देर में फिर स्वस्थ होकर उसने वाष्परुद्ध स्वर में हाथ जोड़कर धीरे-धीरे गाना आरम्भ किया—

दो मैं एकौ तौ न भई,
ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई।
ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि ठई,
सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकलमई।
दो मैं एकौ तौ न भई।

संध्या हो गई थी और एकान्त मन्दिर में मूर्ति के सामने प्रदीप झिलमिला रहा था। गाते-गाते प्रमोद आत्म-विस्मृत होने लगा। वह मानो पृथिवी से ऊपर उठ कर हवा के किसी ऊँचे स्तर पर पहुँच गया। भावावेग में उसने अनुभव किया कि उसके सामने उसके नन्दगोपाल नाच रहे हैं, उनके पैरों के घुँघरू भी मीठी झनकार मन्दिर के कोने-कोने में गूँज रही है।

बिह्वल होकर प्रमोद मूर्ति के चरणों पर लोट गया, उसकी आँखों से आँसुओं की धारायें बह चलीं और गोपाल के चरण उस पवित्र आँसुओं से भींगने लगे।

ठीक इसी समय मनोरमा के निकट उसकी सखी आई जो पड़ोस में ही रहती थी। वह सखी शहर की रहने वाली और अपनी चंचलता के चलते गाँव के घर-घर में विख्यात थी। मनोरमा को सर झुकाये देखकर उसने कहा—आज चाँद पर बादल कैसे ? क्या यह रूप, यह जवानी झख मारने के लिये ही है रानी।

मनोरमा सचेत होकर बैठ गई और मुस्करा पड़ी। वह चंचला रूपसी मनोरमा से सटकर बैठती हुई फिर बोली—तुम्हारे विनोद बाबू का कोई समाचार नहीं मिला। उन्हें तुमने जाने ही क्यों दिया, यदि मैं होती तो आँखों में काजल बनाकर उसे रख लेती। प्रेम में जितनी बदनामी होती है उतना ही आनन्द आता है।

मनोरमा ने लज्जापूर्ण मुस्कराहटके साथ कहा—मैं बदनामी से नहीं डरती पगली, पर मधु की आशा से ही मधुमक्खियों के डंक सहना सुखद जान पड़ता है, पर मैं तो ततैये के डंक सह रही हूँ जिनके छत्ते में मधु का नाम भी नहीं है।

मनोरमा की सखी (चमेली) आँखें नचाकर कहने लगी—पगली, होश की दवाकर। विनोद बहुत ही डरू प्रकृति का निकला। एक बार दो कदम आगे बढ़कर जब पीछे लौटा तो दुनिया की अन्तिम छोर तक हटता ही चला गया। वह शहरी रसिया बन गया है। मैंने देखा है शहर में एक से एक परियाँ रौनक फैलाती चलती हैं। गाँव की हम गँवारिनों को कौन पूछे।

मनोरमा के हृदय पर एक आघात-सा लगा। चिन्ता का

एक नया रोग चमेली ने उसे लगा दिया । क्या सचमुच विनोद—? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

चमेली ने इधर उधर देखकर कहना आरम्भ किया—तुम्हारे भक्तराज आज कल क्या करते हैं।

मनोरमा का अन्तःकरण विरक्ति से भर गया ? उसने बहुत ही तिक्त मुँह बनाकर कहा—कहीं चोली-घाँघरा पहनकर नाच रहे होंगे। आये थे अभी मुझे उपदेश देने। कहने लगे—तुम रोकर भगवान् के सामने प्रायश्चित करो।

चूल्हे में जाय ऐसा प्रायश्चित्त और उनके भगवान! अभागा कहीं का !!!

चमेली मनोरमा के गले में बाँस डालकर कहा—मेरी रानी, तुमने पाप ही कौन सा किया है ? हाँ, एक पाप यह अवश्य किया कि इस घर में अपनी सोने सी जवानी का खून कर रही हो। यदि तुम्हारी जगह पर मैं होती ,तो इस अभागे चर में आग लगा कर।......

मनोरमा ने बीच ही में कहा—मैं भी तो यही चाहती हूँ सखी, पर कहीं ठौर ठिकाना भी हो। विनोद का पता ही नहीं चलता और संसार मेरे लिये पूरा गोरखधन्धा है। आठ वर्ष हुए इस घर के भीतर जो घुसी हूँ सो बाहर कदम रखने का अवसर नहीं आया—हाँ, एक बार जगन्नाथ गई थी। अब तो शायद मेंरी लाश ही......बाहर निकलेगी।

'मायके चली जा'—चमेली ने गम्भीर होकर कहा—मेरी कही मान प्यारी ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि ये तुम्हें घुला-घुलाकर मार डालने का दृढ़ संकल्प कर चुके हैं। राम, राम—शीशे में अपना मुँह तो देख, सूखकर सोंठ हुई जा रही हो।

चमेली ने नखरे से मनोरमा की ठोड़ी पकड़कर दीवार के सहारे खड़े रहनेवाले शृंगारदान की ओर उसका मुँह घुमा

दिया। मनोरमा कराह कर कहने लगी—सखी, क्या करूँ समझ में नहीं आता। मायके जाना चाहती हूँ तो वे जाने नहीं देते। तुम मेरी मा को पत्र लिख दो कि वे किसी को भेजकर मुझे बुलवालें।

चमेली ने विषभरी मुस्कान के साथ कहा—मा को क्यों, अपने छोटे बाबू को क्यों नहीं बुलाती।

मनोरमा लज्जित हो गई और कहने लगी—छोटे बाबू की चर्चा व्यर्थ है। वह मेरे देवर हैं—यह ठीक है कि उन पर मेरा स्नेह है पर······मायके जाना ही ठीक होगा।

चमेली खिलखिला कर हँस पड़ी और मनोरमा के गले में लिपट कर कहा—पगली—"निहुरे निहुरे कहुँ ऊँट की चोरी।"

मनोरमा भी अपने आपको छिपा न सकी। उसने भावावेश में आकर कहा—सखी, प्रेम तो जाति धर्म के बन्धन की कभी परवा नहीं करता। वह तो केवल आत्म-बलिदान चाहता है, चाहता है कि उसके प्रज्वलित हवन-कुंड में संसार के सभी दोष-गुण, सत्य-असत्य, धर्माधर्म, जीवन मरण एक साथ ही स्वाहा हो जायँ। मैं कैसे अपने को रोक सकती हूँ सखी।

मनोरमा की उत्तेजनापूर्ण बातों से चमेली सन्नाटे में आकर बोली—तो क्या अब तुम पीछे नहीं लौट सकती रानी ?

"नहीं, कभी नहीं"—जोर से सिर हिलाकर मनोरमा ने कहा—मैंने अपने को जब गँवा दिया तो फिर संसार पर मेरा मोह नहीं है। कौन बाल-बच्चे हैं जिनका मुँह देखूँ। बन की अकेली चिड़िया हूँ—सुबह इस डाल पर तो संध्या उस टहनी पर।

चमेली ने पूछा—तो क्या अब तू यहाँ रहना भी नहीं चाहती ?

मनोरमा ने गुर्रा कर कहा—एक क्षण भी नहीं, एक मुहूर्त भी नहीं।

चमेली मनोरमा के विषय में बहुत कुछ जानती थी, उसने उसके हृदय का नब्ज टटोला था। किन्तु उस दिन मनोरमा के मुँह से ऐसी भयङ्कर बात सुन कर वह भय से सिहर उठी। डरे हुए स्वर में चमेली ने फिर पूछा—मनोरमा, तू पगली तो नहीं हो गयी? तुझे मालूम होना चाहिए कि फूल के भीतर से एक बार बाहर निकल कर सुवास फिर फूल के भीतर प्रवेश नहीं कर सकती।

मनोरमा कहने लगी—सखी, मैं जानती हूँ कि अपने घोंसले में अपने ही हाथों से आग लगाना कितना कठिन है, पर जब वह घोंसला भाग्य की गति से निष्ठुर बन्दीखाना बन जाय तो हमारा क्या कर्त्तव्य होगा, यह सर्व विदित है।

चमेली ने कहा—तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि तुम्हारे एक हाथ में श्वसुर-कुल है और दूसरे हाथ में पितृ-कुल। इन्हें यदि तुम विनाश के पत्थर पर पटक कर चूर-चूर-कर-डालोगी तो तुम्हारी स्थिति कितनी दयनीय हो जायगी?

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

---

(१८)

गदाधर विनोद के साथ ठीक उसी तरह चिपक गया जैसे किसी हतभागे के साथ उसका दुर्भाग्य चिपक जाता है। सहज विश्वासी विनोद ने उस बङ्गाली नवयुवक को जो अपने को त्यागी, षड़यंत्री, क्रान्तिदर्शी, साहित्यिक, राजनीतिज्ञ और सर्वहारा के रूप में क्षण-क्षण पर प्रकट करता रहता था। दोनों बन्धु उस छोटे-से दिहाती स्टेशन पर उतरे, जिस स्टेशन पर

देश के भिन्न-भिन्न भागों से आनेवाली सेवा-समितियों के कैम्प लगे हुए थे और उन कैम्पों में कार्यकर्त्ता मुलायम गद्दों पर लेटे हुए आजादी, क्रान्ति और उग्र राजनीति के सम्बन्ध में गरमागरम बहस किया करते थे तथा योजनाएँ बनाया करते थे। गदाधर ने विनोद से कहा—भैया, इन मोटे कार्यकर्त्ताओं को देखो जो सेवा तो कम किन्तु अखबारों में रिपोर्टें अधिक भेजा करते हैं। मैं इनसे घृणा करता हूँ। ये पक्के पूँजीवादी और शोषक हैं।

विनोद ने चकित होकर उन कीमती कैम्पों की ओर देखा जिनके सामने छिड़काव हो चुका था और कुर्सियों पर बैठे हुए कीमती कपड़े पहने दुखियों के दुख से सदा कातर रहनेवाले सज्जन चाय और मिष्टान्न से दिन का उपसंहार कर रहे थे। विनोद का मन भी तीव्र घृणा से भर गया। गदाधर विनोद की बाँह पकड़ कर बोला—यहाँ से दो कोस पर हमारे जैसों का निवास-स्थान है। मैं तुमसे प्रार्थना करूँगा कि तुम वहीं चलो। हम लोगों ने दुखियों की सेवा का जो व्रत लिया है, तुम्हारे सहयोग से वह व्रत निश्चय ही पूर्ण होगा—यह बात मैं अपनी ओर से नहीं, माता के आदेश से कह रहा हूँ।

विनोद यद्यपि माता या माता के आदेश के विषय में कुछ भी नहीं जानता था, फिर भी गदाधर माता के नाम पर जो कुछ भी कहता था उसके प्रति विनोद का हृदय अज्ञात रूप से नम्र और अनुकूल हो जाता था। गदाधर ने विनोद की चुप्पी से विशेष उत्साहित होकर भक्ति-गद्‌गद कंठ से फिर कहा—विनोद, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में एक प्रचण्ड अग्नि जल रही है और वह अग्नि एक दिन संसार के सारे अन्याय, अत्याचार, शोषण को जलाकर भस्मीभूत कर डालेगी। तुम देखोगे, मंडली का प्रत्येक सदस्य मानों पहले से ही तुम्हारे

आगमन की बात जानकर उत्सुक बना बैठा है। हम भी दीन-दुखियों के दुख-दर्द की पुकार सुन कर ही यहाँ तक दौड़े आये हैं, नही तो हमारा कार्य-क्षेत्र तो दूसरा है।

विनोद ने पूछा—मैं यह जानने को विशेष उत्सुक हूँ कि अब तक तुम करते क्या रहे?

गदाधर आकाश की ओर मुँह उठा कर और हाथ के थैले को नीचे रख कर फिर दोनों हाथ जोड़ते हुए कहने लगा—मैं तो कुछ भी नहीं जानता। अरि-दल-दलनी, सिंह-वाहिनी का जैसा आदेश होता है, मैं वही करता हूँ।

विनोद ने उत्सुकतापूर्वक आकाश की ओर सिर उठा कर देखा। मगर उसे कहीं भी गदाधर की अरि-दल-दलनी, सिंह-वाहिनी दिखलाई नहीं पड़ी। फागुन की संध्या धीरे-धीरे शस्य-हीन, उजाड़ खेतों पर उदासी बरसाने लग गयी थी। दोनों पक्की सड़क छोड़ कर खेतों से होकर जाने वाली पगडंडी पर आ गये। मार्ग-प्रदर्शक की तरह आगे-आगे गदाधर चलने लगा। खेतों को पार कर वे आम की घनी-बारी के बीच से होकर चलने लगे। झड़े हुए पीले पत्तों से पगडंडी ढँकी हुई थी और इनके चलने से चुरमुराहट की ध्वनि प्रकट होती थी। हल्की, ठंढी और सहजन के फूलों की महक लेकर हवा आ रही थी। आम की बारी को पार करके जब दोनों उस नदी के तट पर आकर खड़े हो गये, जिसमें छिछला जल बह रहा था। कुछ कौए उस जल में पंख फड़फड़ा कर स्नान करते नजर आते थे। दो-चार कुत्ते दौड़ते हुए और खेलते हुए भी दिखलाई पड़े।

विनोद ने कहा—गदाधर बाबू, इस निर्जनता के भार को मेरा मन सहन करने में असमर्थ हो रहा है। क्या मानव नाम

के प्राणी का देश के इस अञ्चल में सदा के लिए लोप ही हो गया है ?

गदाधर ने आँखों में आँसू भर कर और करुणा-विगलित स्वर में कहा—मार डाला ! हाय, इन्हें उन लोगों ने समूल नष्ट कर डाला।

विनोद खड़ा हो गया और चौंककर बोला—किसने मार डाला, किसने लूट लिया ?

गदाधर अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर हवा में हिलाते हुए गम्भीर स्वर में कहने लगा—शोषकों ने। हमें इनसे बदला लेना होगा। आँख के बदले आँख और सिर के बदले सिर।

विनोद चुप लगा गया। दोनों नदी के उस पार पहुँचे। गो-धूलि का धुँधला आवरण संसार की रंगीनियों पर पड़ चुका था। सामने एक छोटा-सा गाँव था, कुछ बड़, पीपल और आम के वृक्षों से घिरा हुआ; छोटे-छोटे कच्चे घर खर-पात से ढके हुए किन्तु बड़ी मनोवेधक निर्जनता मानों यह परित्यक्त गाँव हो जहाँ के निवासियों की तो बात ही अलग रही, चिड़ियों और कुत्तों तक ने उसका त्याग कर दिया हो। गदाधर ने कहा—यह देखो, सोने की लंका जिसे प्रतिक्रियावादियों ने खाक में मिला डाला।

विनोद के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकला और शून्य में विलीन हो गया। दोनों गाँव की ओर मुड़े, क्योंकि वे रात को वहीं ठहर जाना चाहते थे।

विनोद ने कहा—मैं चाहता हूँ कि यहाँ न ठहरा जाय। इन गरीबों पर अधिक भार लादना उचित नहीं जान पड़ता।

गदाधर ने कहा—बिना जल में उतरे हम कमल नहीं प्राप्त

कर सकते। हम अगर छाती पर पत्थर रख कर आगे नहीं बढ़ेंगे तो सेवा कैसे हो सकेगी ?

इतना बोल कर गदाधर पूर्व-परिचित की तरह गाँव में घुसा और एक दरवाजे पर खड़ा होकर बोला—रानी माँ, तुम्हारा अधम पुत्र गदाधर आ गया। आओ मेरे प्यारे जगन भैया, श्री नारायण······नारायण······।

बन्द दरवाजे के भीतर से अचानक नारी-कंठ से रोने की आवाज आयी। गदाधर फिर बोला—माँ, कल्याण तो है। यह रोदन-क्रन्दन तुम्हारे इस पुत्र को विकल किए डालता है।

धीरे-से दरवाजा खोल कर पगली की तरह एक प्रौढ़ा बाहर आयी। उसके बाल धूल से भरे हुए थे और आँखें लाल हो रही थीं। वह दरवाजे के बाहर निकलते ही धूल में बैठ गयी और दोनों हाथों से सिर पीटती हुई बोली—हाय, जगन ने धोखा दिया। अब कौन तुम्हारा सत्कार करेगा ?

गदाधर ललाट पर आँखें चढ़ाकर चिल्ला उठा—क्या कहा ? जगन ने धोखा दिया ? कब ?

प्रौढ़ा सिर धुनती हुई बोली—अभी-अभी उसे स्मशान में पहुँचा कर आयी हूँ। गाँव में कोई उठाने वाला भी नहीं मिला। देखो, जाकर देखो। वह अभी बालू पर ही पड़ा होगा।

इतना कह कर प्रौढ़ा विनोद और गदाधर को पकड़ कर खींचती हुई एक ओर ले चली।

---

(१६)

विनोद गदाधर के साथ, विनाश के तांडव देखता हुआ, निश्चित स्थान पर पहुँचा। नेपाल की तराई में, जंगलों से घिरा हुआ जिस गाँव में गदाधर ने डेरा रक्खा, वह गाँव

दुनिया की दृष्टि से ओझल था। जो सबसे नजदीक रेलवे स्टेशन था वह पूरे पच्चीस मील से निकट न था और रास्ते में कई भयंकर बन भी पड़ते थे। उस रहस्यपूर्ण गाँव में पहुँचकर विनोद ने अपने आप को संसार से एकदम अलग पाया। उसे ऐसा लगा कि वह मरकर किसी ऐसे लोक में पहुँच गया है कि जहाँ से वह नीचे की वसुधा को झाँककर भी नहीं देख सकता—अपनी पूर्व स्मृतियों के टुकड़ों को जोड़कर ही अतीत का एक सही या गलत रूप बना सकता है। वह गाँव जंगलियों का था जो अपने थोड़े से खेतों में चना, मटर आदि पैदा करके किसी प्रकार जी रहे थे। उनमें न शिक्षा थी और न किसी प्रकार की उन्नति मूलक संस्कृति। मध्ययुग के शेष उत्तराधिकारी के रूप में वे ग्रामीण अपनी पुरानी रूढ़ियों में लिपटे हुए सुखी थे।

गदाधर के और साथी भी उसी गाँव के एक कच्चे घर में में थे जो संख्या में १०।१५ से अधिक न थे। वे सभी स्कूल-कॉलेजों के तथा दुर्भाग्य के खदेड़े हुए नवयुवक थे जिनका सारा समय गरम भाषा में बहस करने, योजनायें बनाने और पेट के लिए कुछ भोजन संग्रह करने में समाप्त होता था। वे सशंकित, भीत और विकल से दिखलाई पड़ते थे—जिनमें बंगालियों की प्रधानता थी।

विनोद दो चार दिनों में ही जब कुछ ऊबने लगा तो गदाधर ने कहा—विनोद भैया, यह गाँव भारत का, उस भारत का जिसमें सात लाख गाँव हैं, हृदय है—हृदय! ये जो १५-२० सर्वहारा यहाँ दिखलाई पड़ रहे हैं, इनकी क्षमता अपरिमित है—यदि इन्हें गोली मार दी जाय तो तुम यह मान लो कि भारत की राजनीति का नक्शा ही बदल जायगा और इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि देश एक ही झटके में कम से कम

एक सौ साल पीछे पहुँच जायगा—यानी १८४४ में।

लीवर में एकाएक दर्द पैदा हो जाने के कारण गदाधर बोलता-बोलता अचानक रुक गया तो गाँजे की चिलम पर आग रखता हुआ एक दूसरा सर्वहारा बोला—"कामरेड, हमने भारत के लिए अपने सिर का मोह बिसार दिया है—तुम तो सब देख ही चुके हो। माता के चरणों की सौगन्ध खाकर हम सभी एक मन प्राण हो चुके हैं—अब तो केवल "स्वीच" पर हाथ रखने भर की देरी है—देख लेना क्या होता है।

विनोद अचकचाकर वक्ता की ओर देखने लगा। बीस-पच्चीस साल की उम्र, शीर्ण शरीर, सिर पर लम्बे-लम्बे बाल और कोटर में धँसी हुई आँखें—यही बोलनेवाले का शब्द चित्र है। उत्तर बंगाल का रहनेवाला 'शचीनबागची, जो अब तक कम्बल में मुँह ढाँपे पड़ा पड़ा चिउड़ा खा रहा था, अचानक उछल कर उठ बैठा और बोला—"महाकाली की जय, गदाधर भैया, मैंने अभी-अभी एक स्वप्न—स्वप्न क्या जाग्रत स्वप्न देखा-अहा!"

इतना कहकर शचीन रोने लगा। गदाधर दर्द भूलकर शचीन की ओर विस्मय विमुग्ध दृष्टि से देखने लगा तथा जो जो युग-प्रवर्तक सर्वहारा वहाँ उपस्थित थे, वे खिसककर शचीन के निकट चले आये। केवल विनोद अपनी जगह पर चुपचाप बैठा रह गया। शचीन ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—माँ, माँ, माँ—माँ तू ही थी और कोई नहीं—मेरी करुणामयी, एक बार और दर्शन दो माँ। देश का संकट, हाय, मेरी माँ, देश की रक्षा करो।

गदाधर भावावेश में आकर कुछ कहना चाहता था किंतु लीवर के दर्द ने उसे वेजार कर रक्खा था, वह होठों में ही बड़बड़ा कर रह गया।

शचीन ने बाष्परुद्ध कंठ से कहा—सुन लो, मेरे साथियो सुन लो—मैंने देखा साक्षात् महाकालेश्वर आकाश फाड़कर पृथ्वी पर कूद पड़े और महाकाली के साथ नाचने लगे। देखते ही देखते प्रलय हो गया।

गाँजे की चिलम को सयत्न कोने में रखता हुआ नन्द-गोपाल धीरे से बोला—साले ने अच्छा नाटक किया, जान पड़ता है आज गहरी छनी है साले की।

विनोद के कानों में नन्दगोपाल का यह सारवान् वक्तव्य पहुँचा तो उसका मन घोर घृणा और वितृष्णा से भर गया। "भारतोद्धारक सर्वहाराओं" का साथ उसे अखरने लगा।

गदाधर ने विनोद की विरक्ति की ओर ध्यान दिया और स्नेह मिश्रित स्वर में वह बोला—विनोद, ये नवयुवक भावावेश में पागल से हो रहे हैं। मैंने ही इन्हें रोक रक्खा है नहीं तो अनर्थ का सूत्रपात होते विलम्ब नहीं लगता। "अनर्थ का सूत्रपात" करने वाली इस विजयिनी सेना की ओर देखकर किसी भी अति-आशावादी का हृदय निराशा से कराह उठता, सो तो विनोद जन्म से ही निराशावादी था—वह दीर्घ-निश्वास त्यागकर उठा और अपने बिस्तर पर जाकर चुपचाप लेट गया। गदाधर कुछ-कुछ विस्मित-सा विनोद की ओर देखता रह गया।

विनोद के लिये आकर्षण का केन्द्र था गाँव का भोलापन और गहन बन। वह चुपचाप गाँव की गलियों को पार करता हुआ जंगल में घुस जाता तथा सारा दिन इधर-उधर घूमता या किसी गहन छायादार वृक्ष के नीचे आराम से लेट जाता। एकान्त में पहुँचते ही विनोद के सामने मनोरमा की मादक मूर्ति स्पष्ट हो जाती। पहले तो विनोद एकान्त से घबराता था पर धीरे-धीरे वह भीड़ से—दो चार व्यक्तियों से भी—घबराने

लगा। वह यही चाहता था कि उसे कोई न छेड़े, वह एकान्त में बठा-बैठा मनोरमा को देखा करे, उससे बातें करे या आँखों के आँसुओं से अपने हृदय का भार हल्का किया करे। जब-जब गदाधर विनोद के पीछे लग जाता उसे बहुत ही बुरा जान पड़ता। गदाधर एक ऐसा व्यक्ति था जिसे बकवास करना प्रिय था किन्तु विनोद को बोलने से बहुत-ही नफरत थी, वह अपने ही भीतर अपनी समस्त वृत्तियों को कैद करके समय व्यतीत करना पसन्द करता था। विनोद का दैनिक जीवन नीरसता और निराशा के वातावरण में व्यतीत होता था।

विस्तर पर लेट कर विनोद ने अपने भविष्य के विषय में सोचने का प्रयत्न किया पर उसे विफल होना पड़ा। रास्ते में उसके विनाश और मृत्यु का जो रूप देखा था वह भुलाये नहीं भूलता था। चारों ओर महामारी, गाँव का गाँव मिट्टी में मिल जाना और घोर दरिद्रता के साथ देहातियों की आशा-हीन स्थिति। विनोद के लिये इन सारे दृश्यों के भीतर एक ही बात छिपी थी और वह भी अपने आप को मिटा देना। उसे इस बात पर काफी झुँझलाहट होती थी कि दुर्भाग्य की लगातार मार खाकर भी देहातियों में जीवन का संचार क्यों नहीं होता। वे अपनी दुर्गति पर प्रहार क्यों नहीं करते।

विनोद ने अपनी सारी मनोव्यथा को मनोहर तक पहुँचाने का प्रयत्न पत्र लिखकर किया किंतु कई मील तक पोस्ट आफिस न होने के कारण उसके मन में बड़ी झुँझलाट होती थी। वह पत्र लिखता और अपने पाकेट में ही रख लेता। जब अवसर मिलता तो पर्याप्त परिश्रम के बाद उन्हें डाक में डाल आता। विनोद अपने पत्र में सारी बातें जी खोलकर लिखता था।

एक एक दिन करके फागुन शेष हो गया। हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहना जब विनोद के लिए कठिन हो गया तो वह

एक दिन गदाधर से बोला—यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि गैरिक वस्त्र पहनकर भारत के एक गुप्त कोने में जीवन के दिन व्यतीत करना कौन सी समझदारी है।

गदाधर ने ललाट पर आँखें चढ़ाकर कहा—भैया, उतावला मत बनो। हमारे सामने जो कार्यक्रम है वह तलवार की धार पर चलने से भी अधिक खतरनाक है। हम संसार की ओछी नजरों से अपने को छिपाकर……।

विनोद मुस्करा कर कहने लगा—आखिर सीधी-सी बात को तुम सब मिलजुल कर इतना भयानक क्यों बना देते हो। देश की स्थिति भयंकर हो गई है, यह नन्दन वन अब रेगिस्तान बनना चाहता है तो हमारा कर्तव्य बिलकुल साफ और सीधा है। इतनी छिपावट तो हम तभी कर सकते हैं जब कि हम अपराध या पाप करने चले हों।

तुम नहीं समझते—हाथ नचाकर गदाधर ने कहा—हम एक कठोर साधना में लगे हुए हैं। हमारे सर्वहारा भारत के गाँव-गाँव में हैं, देश देश में हैं, जापान, जर्मनी, रूस, चीन सभी महान् राष्ट्रों में हम अपना जाल बुन चुके हैं।

विनोद मुस्कराकर जब चुप लगा गया तो गदाधर से फिर इधर उधर देखकर कहा—तुम जानते हो, छोटे छोटे कामों के लिये तो पर्याप्त धन की आवश्यकता पड़ती है और यह तो एक देश का, महान् देश का जिसके निवासी चालिस करोड़ के लगभग हों और क्षेत्रफल लाखों वर्गमील, कितना धन चाहिये जरा कल्पना तो करो।

विनोद ने चौंककर कहा—इतना धन ? कहाँ से प्राप्त करोगे तुम इतना धन ?

गदाधर ने छाती निकाल कर कहा—जिनके पास व्यर्थ बहुत से पड़े होंगे। उन से लेकर—माता का यही आदेश है।

हित के लिये आपरेशन करना, किसी के शरीर पर छुरी चलाना पाप नहीं है, बुराई नहीं है—समझे।

विनोद गदाधर की बातें सुनकर इस सोच में पड़ गया कि ये जो पन्द्रह सोलह महारथी यहाँ पड़े हैं, वे प्राय: बङ्गाली हैं और उनमें आधे मलेरिया, प्लीहा, यकृत और दमे से अधमरे हो रहे हैं। गाँजा, शराब और बकवास इनका जीवन है। गदाधर पागल या सनकी तो नहीं है जो फूँक मारकर घिरी हुई घटाओं को हटाने का 'प्लान' बनाये बैठा है। जर्मनी और रूस के सपने देखनेवाले इन मूर्खों के स्वर्ग में रहना धीरे-धीरे विनोद के लिए कठिन हो गया। उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि उस गाँव का आकाश नीचे उतर रहा है, जमीन ऊपर उठ रही है, दिशायें सिमट रही हैं और इस तरह विनोद बीच में दबता चला जा रहा है। वह जब-जब घबराता, एक दो दिन के लिये चुप लगा जाता या दिन भर जंगलों में घूमता। इसी बीच एक घटना घटी जिससे सहसा वातावरण में कुछ जीवन का संचार हो गया।

आधी रात को एक 'सर्वहारा' आया और गदाधर से फुसफुसा कर कुछ बोला।

गदाधर ने अपनी सर्वहारा सेना को आदेश दिया कि "कूच का डंका बजा दो नहीं तो सर्वनाश सिर पर वज्र बनकर गिरना ही चाहता है।"

विनोद के लिए यह पहला अवसर था। उसने कहा—"भय क्या है?"

गदाधर ने जल्दी से कहा—शत्रु! शत्रु!!—"क्वीक मार्च!"

विनोद इस सूत्रमासा का मर्म नहीं समझ सका—वह भी बिस्तर लपेटकर खुली सड़क पर आ गया। गदाधर विनोद के

साथ स्टेशन की ओर चल पड़ा और शेष योद्धा काँखते, कराहते और टाँगें घसीटते इधर-उधर बिखर गये। स्टेशन की ओर चलता हुआ विनोद ने गदाधर से साग्रह कहा—क्यों जी, यह उत्पात कैसे हो गया।

गदाधर ने बहुत ही गौरव से उत्तर दिया—'पुलिस को हमारा पता चल गया।'

विनोद ने सरलता पूर्वक कहा—तो इसमें हानि ही क्या है, लग जाय पता। हम छिपे हुए थोड़े ही हैं।

गदाधर ने इधर-उधर देखकर कहा—"हम 'सर्वहारा' दल के हैं, समझ गये न?"

---

(२०)

फाल्गुन का अन्त हो रहा था—दो ही चार दिनों में होलिका दहन होने वाला था। प्रकृति उदास किन्तु अलस हो गई थी। पत्ते गिर रहे थे और हवा में गर्मी आ गई थी। दिन भर दूर-दूर से कोयल की थकी हुई आकुल कूक सुन पड़ती थी—कुहू, कूहू! पुष्पा मनोहर के बँगले में जाते-जाते सहसा रुक गई, क्योंकि कमरे के भीतर से वीणा की सुरीली आवाज आ रही थी। पुष्पा ने सुना, वीणा कह रही थी—मैंने तो कोई वैसा अपराध भी नहीं किया। मिस पुष्पा······।

अपना नाम सुनते ही पुष्पा का हृदय धड़क उठा। वह धीरे-धीरे दरवाजे पर पहुँची और खड़ी होकर कुछ सोचने लगी। वीणा ने फिर कहा—तुम्हें परमात्मा ने सब कुछ दिया है पर हृदय नहीं दिया। मस्तिष्क से संसार का काम नहीं चलता। पुष्पा के विषय में तुम्हारा निश्चय भले ही अभीनन्दनीय हो पर मैं कहूँगी कि तुम हृदय से बहुत ही कम काम लेते

हो, मनोहर ! दिमाग के तराजू पर तौलकर जीवन व्यतीत करना अपने को मेशीन बना डालना है। मैं ऐसे जीवन से घृणा करती हूँ। मानव आनन्द लूटने के लिए पृथ्वी पर आया है न कि आन्दोलन करने के लिए।

पुष्पा ने पर्दा हटाकर झाँका, दूर पर मनोहर चुपचाप बैठा है और वीणा खड़ी होकर—वकील की तरह—बोल रही है। वह आवेश में जान पड़ती थी।

पुष्पा को देखते ही मनोहर कुछ लज्जित-सा हो गया। और बोला—अहो भाग्य, पधारिये।

इस स्वागत के भीतर जो व्यंग छिपा था उसकी ओर पुष्पा का ध्यान नहीं गया। वह मनोहर को देखकर आत्म-विस्मृता-सी हो उठती थी। वीणा ने भी लौटकर देखा, क्योंकि उसकी पीठ दरवाजे की तरफ ही थी। वह भी अकचका कर बोली—"वहाँ क्यों रुक गईं, आइये—हम यों ही बहस कर रहे थे, समय काटने के लिये।

पुष्पा चुपचाप जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई तो वीणा ने कहा—मनोहर बाबू, अब मुझे आज्ञा दीजिये—मैं चली।

मनोहर ने वीणा को ठहराने का जो निर्बल आग्रह किया उसे उस चतुर रमणी ने भाँप लिया और वह मन ही मन मर्माहत हो गई। पुष्पा ने थके स्वर में कहा—वाह, यह भी एक ही रही। आप बैठिये, मेरे आते ही आपका चला जाना मुझे गलतफहमी में फँसा देगा।

वीणा तेज स्वर में कह उठी—कैसी गलतफहमी, आप क्या कह रही हैं ?

'मैं ठीक ही कह रही हूँ'—पुष्पा ने दृढ़ स्वर में कहा—'मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है कि मैं ही कबाब में हड्डी बनकर आई। मनोहर भैया, चुप क्यों हैं ?

'हूँ'—कहकर वीणा कमरे से बाहर हो गई। पुष्पा मन ही मन डरी और पछताई भी। वह गरीब की लड़की थी, उसका हृदय कोमल था। उसने समझा कि उसके मुँह से नहीं बोलने योग्य कोई बात निकल गई जिससे वीणा देवी को बहुत ही कष्ट पहुँचा है। पुष्पा को डरी हुई देखकर मनोहर ने कहा—चिन्तित क्यों हो उठी पगली ! वह नाराज हो गई तो हमारी बला से। तू सदा निर्भय रहा कर—मैं जो तेरे साथ हूँ।

इतना बड़ा आश्वासन पाकर पुष्पा अपने आपको रोक नहीं सकी। वह मनोहर के निकट खिसककर बोली—भैया, तुम······पगले हो······मैं क्यों डरूँगी।

मनोहर ने कहा—सुनो, मैं कालेज गया था पर तुमसे मुलाकात नहीं हो सकी। विनोद का एक पत्र आया है—वह एक मास पर मुझे मिला। लिफाफा खोलकर फिर से चिपकाया गया था। पत्र में विनोद ने जो कुछ लिखा है वह एक खतरनाक वर्णन है। यदि उसका पता होता तो मैं जाकर उसे पकड़ लाता। वह पाजी गदाधर उसके पीछे पड़ा हुआ है।

पुष्पा ने भोलापन के साथ कहा—कौन गदाधर ?

मनोहर ने सहसा गम्भीर होकर कहा—एक आवारा बंगाली है, जो अपने को 'सर्वहारा' कहता है, क्रान्तिकारी के रूप में अपने को दूसरों के सामने पेश करता है पर है पक्का चोर, डकैत और नालायक ! वह फरार है—भगोड़ा है।

भय से सिहर कर पुष्पा इधर-उधर देखने लगी—उससे बोला न गया। दोनों होंठ मानों एक दूसरे से चिपक गये।

मनोहर ने फिर कहा—यदि मेरे सामने गदाधर आ जाय तो मैं निश्चय ही उसे गोली मार दूँ। उस अभागे ने कालेज के बहुत से होनहार छोकरों का जीवन नष्ट किया है। ये

लम्बे बालों वाले, दुबले, आवारे बंगाली मेजिनी और लेनिन का स्वाँग भर कर दूसरों का जीवन नष्ट कर रहे हैं।

पुष्पा ने कहा—क्यों भैया, तुम इन पर इतने क्रुद्ध क्यों हो?

मनोहर ने कहा—मैं किसी पर क्रुद्ध क्यों होने लगा। मुझे मालूम है कि यह युग की लहर है। कभी भारत में धार्मिक तूफान आया था। नाना प्रकार के मतमतान्तरों के आचार्य प्रकट होते चले गये और अब इन राजनैतिक आवारों का युग आया है। पाश्चात्य जगत् से ही अनेक बुराइयों के साथ एक बुराई यह भी यहाँ आई है—यह तो रूस और आयरलैंड की सस्ती और बेहूदी नकल मात्र है जिसमें कोई भी तत्व नहीं है। ये अधकचरे आवारे छोकरे······क्या बतलाऊँ।

पुष्पा घबराई सी सुनने लगी और मनोहर बोलता गया—विनोद एक मेधावी और स्थिर-चरित्र का नवयुवक है। यदि वह अपनी बुद्धि-सम्पत्ति का सदुपयोग करता तो इसमें संदेह नहीं कि देश और समाज का अकथनीय हित होता पर गदा-धर के साथ लेनिन बनने की धुन में वह भी नेपाल की निर्जन तराइयों में मारा-मारा फिर रहा है······छिः।

इतना कहकर खिन्न हृदय मनोहर ने विनोद का वह लम्बा पत्र निकाल कर पुष्पा के आगे धर दिया जो उसने भेजा था। पुष्पा ने काँपते हाँथों से उठाकर उस पत्र को पढ़ना आरम्भ किया।

ठीक इसी समय विनोद के पिता हरनन्दन बाबू ने धीरे-धीरे मनोहर की कोठी में प्रवेश किया। वे थके से और अवस्था से अधिक वृद्ध जान पड़ते थे। उनकी आँखें चिन्ता में डूबी सी थीं और वे कदम-कदम पर मानो रुकते हुए आगे बढ़ रहे थे।

स्वागत् संभाषण के बाद मनोहर ने कहा—चाचा जी, विनोद का कोई निश्चित पता मुझे भी मालूम नहीं है। मैं नहीं कह सकता वह कहाँ है, क्या कर रहा है।

हरिनन्दन बाबू रुआँसे-से होकर कहने लगे—छाती पर पत्थर रखकर······।

मनोहर का हृदय भी उमड़ आया। उसने कहा—चाचाजी, मैं निराश हो गया। पता नहीं चलता विनोद के दिमाग में कौन सा विकार पैदा हो गया है। पहले तो वह एक गन्दे घर में रहने लगा। किसी-किसी तरह मैं उसे अपने यहाँ ले आया। यहाँ भी उसका जी न लगा—पता नहीं कहाँ गया। विश्वास तो होता है कि·········।

क्या वह लौटेगा ?—वृद्ध हरिनन्दन बाबूने बच्चों की तरह भोलापन के साथ कहा—उसकी माँ मरणासन्न है, भाई ने सन्यास लेने का निश्चय कर लिया है। मेरी सोने की गृहस्थी लंका की तरह जल रही है—कोई बुझाने वाला नजर नहीं आता।

मनोहर सिर झुका कर चिन्ता में डूब गया और रुलाई के वेग को न सँभाल सकने के कारण पुष्पा सिर झुकाकर एक पुस्तक उलटने लगी। हरिनन्दन बाबू चमड़े की कुर्सी से छू न जायँ, इस भय से एक बेंत की कुर्सी पर अपने कपड़े समेटकर सिकुड़े हुए बैठे मनोहर की ओर देखने लगे। मनोहर ने कहा—चाचा जी, विनोद को हमने बहुत समझाया पर वह तो परले सिरे का हठी है। न जाने उसके भीतर ऐसी कौन सी चोट पड़ी है, जिसकी पीड़ा को भूलने के लिए वह बन-बन खाक छानता फिरता है।

विनोद के इस कथन ने हरिनन्दन बाबू को विकलकर दिया। वे जानते थे—मनोरमा की कथा उनसे छिपी न थी। वे

क्या उत्तर देते—उनका चेहरा उतर गया और वे इधर-उधर करके बोले—चोट ? चोट क्या होगी मनोहर बाबू। समझ में नहीं आता······खैर, मैं प्रयत्न करूँगा कि वह सुखी हो।

मनोहर तेज नजरों से हरिहर बाबू के चेहरे पर उठने और मिटनेवाले विविध भावों के हिलोरों को देख रहा था। वह फिर बोला—विनोद बहुत ही गम्भीर स्वभाव का नवयुवक है, साथ ही उसका चरित्र भी उज्वल है। वह जो कुछ करता है खूब सोच समझ कर ही। फिर भी मैं कहूँगा कि इस बार उसने बुद्धि से कम और भावुकता से अधिक काम लिया। भावुकता कभी-कभी मानव को मिट्टी में मिला देती है।

'अवश्य, अवश्य'—कहकर हरनन्दन बाबू कुर्सी से उठने का उपक्रम करने लगे तो मनोहर ने साग्रह निवेदन किया—'आप कहाँ जा रहे हैं, यहीं ठहरिये न।'

हरनन्दन बाबू का मन घृणा से भर गया। मनोहर म्लेच्छ है, खानपान का कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, वह ऐसे म्लेच्छ के यहाँ······राम ! राम !!

हरनन्दन बाबू ने बनावटी विनय के साथ कहा—कई काम हैं। विनोद का विवाह भी तो ठीक हो चुका है। यहीं के वकील भुवनेश्वर बाबू······। इस बार क्षमा कर दें।

पुष्पा, जो अब तक पुस्तक के पेज उलट रही थी, इस विवाह सम्बाद की चोट से मन ही मन चीख उठी और मनोहर के शान्त चेहरे की ओर देखने लगी, अपनी चकित सुन्दर आँखों से।

मनोहर कुछ घबराया-सा बोला—विवाह ? क्या विनोद का विवाह ठीक किया है आपने ?

हरनन्दन बाबू फिर कुर्सी पर बैठ गये और बोले—हाँ, ।

मनोहर ने कहा—पहले विनोद से पूछ तो लीजिये। कहीं ऐसा न हो कि आप भयानक गलती कर बैठें।

हरनन्दन बाबू ने कातर स्वर में कहा—विनोद है कहाँ, जो मैं उससे पूछूँ ?

मनोहर ने मुस्करा कर कहा—तो फिर व्याह कैसे होगा···।

पुष्पा के सुन्दर होठों पर भी मुस्कान की एक लहर दौड़ गई।

× × ×

हरनन्दन बाबू मनोहर की कोठी से चिन्ता में डूबते-उतराते अपने डेरे की ओर चले तो सन्ध्या हो चुकी थी। सड़कें बिजली की स्वच्छ रोशनी से जगमगा उठी थीं। वे अन्यमनस्क भाव से जाते जाते एक मोड़ पर अचानक रुक गये। उनकी आँखों को भ्रम हुआ कि विनोद "मोटर बस" से उतर रहा है।

---

(२१)

हरनन्दन बाबू ने सचमुच विनोद को देखा था।

× × ×

गदाधर के साथ स्टेशन पर आकर विनोद ज्यों ही एक बेंच पर बैठने का उपक्रम करने लगा, गदाधर ने उसका कुर्ता पकड़ कर धीरे से अपनी ओर खींचा और दूर ले जाकर कहा—देखते नहीं उस बेंच पर सी० आई० डी० का इंस्पैक्टर बैठा है, अरे वह देहाती, मैले कपड़ों वाला। विनोद ने शान्त-भाव से लौट कर देखा, सचमुच एक देहाती बैठा आने-जाने वालों को अपनी छिपी हुई नजरों से देख रहा है। यह अधेड़ उम्र का तथा शान्त व्यक्ति जान पड़ता है, जिसके शरीर पर मैले देहाती तरह के कपड़े खूब फब रहे हैं। सिर पर मसली हुई गाँधी टोपी, शरीर पर कुर्ता और पैरों में चमरौधा। विनोद ने

पूछा—वह कौन है ? सी० आई० डी० का······? हाँ···हाँ··· वही···है—घबराया-सा गदाधर ने कहा—उसी ने मेरे तीन सर्वहाराओं को कालेपानी की हवा खिलवाई है। प्रभुनारायण सिंह रायबहादुर इसी का नाम है। देखते नहीं······उफ् कितना भयानक व्यक्ति है।

गदाधर की बातें सुनकर विनोद मुस्करा कर कहने लगा—मुझे तो साधारण मनुष्य की तरह जान पड़ता है। तुम इतना घबरा क्यों रहे हो ?

गदाधर झुँझला कर कहने लगा—घबराऊँ नहीं तो क्या करूँ, यह तोप से भी अधिक खतरनाक है। सर्वहाराओं का उससे बड़ा शत्रु कोई पैदा ही नहीं हुआ।

विनोद ने फिर पूछा-'सर्वहारा' का यह शत्रु कैसे बन गया ?

गदाधर यह कहता हुआ भीड़ की ओर चला कि—फिर कभी कहूँगा, अभी समय नहीं है, इससे बच निकलो।

गदाधर के साथ मन्त्राकर्षित-सा विनोद कुछ दूर तक गया पर उसे यह पता ही न चला कि वह क्यों प्रभुनारायण सिंह से डर रहा है। वह न तो सर्वहारा है और न और कुछ। एक सीधा-सादा उत्सुक विद्यार्थी मात्र है जो देश की दयनीयता के मूल कारण तक पहुँचना चाहता है। कुछ दूर जाकर विनोद ने कहा—सुनो भाई, मुझे इस तरह का भगोड़ा जीवन पसन्द नहीं है। मैं अब भागा-भागा फिरना पसन्द नहीं करूँगा ? दोनों स्टेशन से बाहर निकल कर चाय की एक ऐसी दुकान पर आ गये थे जो अपनी बदनामी और गन्दगी के कारण बहुत दिनों से कुख्यात थी। आस-पास के चोर-उचक्के उस दुकान में जमा होते थे, क्योंकि उसका मालिक स्वयम् एक पक्का उठाईगीर था और उसकी सुन्दरी रखेली ही प्रायः दुकान पर रहा करती थी क्योंकि मालिक या तो फरार रहता था या

जेल में। गदाधर उस दुकान पर आया-जाया करता है—वहाँ के गली कूचे उसके देखे हुए थे। अपने घर की तरह धड़धड़ाता हुआ गदाधर जब दुकान के भीतर घुसा तो दुकानवाली ने आँखें मटका कर कहा—मालिक नहीं है बाबू साहब !

गदाधर रहस्यपूर्ण भाषा में बोला—तभी तो इतनी हिम्मत हुई रेणुका ! ये मेरे अपने भाई हैं। हम यहाँ ठहरना चाहते हैं—वही साला प्रभुनारायण···हे भगवान् ! रेणुका विशेष प्रकार से मुस्करा कर विनोद को कटाक्ष विशिषों से जर्जरित करती हुई बोली—दो-तीन दिनों से ही चक्कर काट रहा है। मालिक फरार हैं और यह मुआ दरवाजे की धूल उड़ा रहा है। एक दो नई सूरतें भी नजर आती हैं।

चाय की दुकान के पीछे एक खपरैल का बड़ा-सा घर है, जिसमें कुछ मुसलमान रहते हैं—एक्केवान्, भठिहारे और कसाई। इसी घर की एक कोठरी में रेणुका रहती है और उसके कीर्तिवान् फरार पतिदेव भी रहते हैं। सभी पक्के चोर और बदमाश हैं तथा उनमें से आधे प्रायः जेल में ही रहा करते हैं। विनोद ने एक बार चारों ओर देखा और अंग्रेजी में गदाधर से कहा —क्या ये भी तुम्हारे सर्वहारा दल के ही हैं।

इस तीव्र व्यंग्य की जहरीली घूँट को गदाधर आराम से पी गया और बोला—तो और कौन हैं ? समाज ने उन्हें धक्के मार कर अपने बीच से निकाल दिया है। बेचारे करें क्या ?

विनोद ने कहा—क्या करने योग्य काम केवल 'फरार' रहना ही शेष बचा है। मैं तुम्हारे सर्वहारा सिद्धान्त को ठीक से समझना चाहता हूँ।

गदाधर ने कहा—माता समझा देंगी। यह दल उन्हीं के आदेश से काम कर रहा है। हम अपनी इच्छा से एक कदम भी नहीं चलते, एक शब्द भी नहीं बोलते, एक कदम भी नहीं

चलते। माता का आदेश ही हमारे लिये नियम-कानून सब कुछ है भैया ?

एक सीढ़ भरी हुई कोठरी का दरवाजा खोलकर रेणुका बोली—बस, इसी में ठहर जाइये।

आत्म तृप्ति के साथ गदाधर ने कहा—स्वर्ग है। जहाँ अपने सर्वहारा भाई हों, वहीं स्वर्ग है—मैं महल, किले को मिट्टी में मिलाने वाला हूँ न कि उनमें आराम करने वाला।

इतना कहा कर गदाधर ने छिपी नजरों से विनोद की ओर देखा जो फर्श पर के अंडे और पियाज के छिलके तथा मुर्गी और कबूतर के पंखों को घृणापूर्ण दृष्टि से देख रहा था। चालाक रेणुका भाँप गई और आँखें मटका कर बोली—दैयारी, आपके साथी घिना रहे हैं। क्या ये नवद्वीप के पक्के वैष्णव हैं ?

गदाधर बोल उठा—नहीं तो। यह भी सर्वहारा है। मेरा भाई, आत्मा का ही एक रूप।

कोठरी अन्धकार पूर्ण थी और नमी भरी हुई थी। काली और टेढ़ी-मेढ़ी दीवारें गन्दी थी—कच्ची और चिपचिपी गच तो बहुत ही घिनौनी थी। बुरी तरह की बास भरी हुरी हुई थी। जान पड़ता था कि इसे बहुत अर्से से खोला नहीं गया है। बाहर निकल कर विनोद ने देखा आँखों में काजल लगाये अनेक नारी मूर्तियाँ तथा ढीला सूथन, पहने हक्के-बक्के लड़के इन नवागन्तुकों की ओर देख रहे हैं—स्त्रियाँ अपनी-अपनी कोठरियों के दरवाजे से झाँक रही हैं। विनोद का मन घृणा से भर गया। रेणुका कहीं से घसीट कर एक खाट ले आई और बोली—ठहरिये, एक और लाती हूँ।

कृतज्ञता प्रकट करते हुए गदाधर ने कहा—तुम साक्षात्

देवी हो। देश को तुम्हारी ही जैसी देवियों की आवश्यकता है। तुम्हारी सेवावृत्ति धन्य है रेणुके !

रेणुका नखरे के साथ बोली—रहने भी दीजिये–लगे आसमान पर चढ़ाने। इसके बाद वह एक खाट और उठा कर ले आई। दोनों खाट कोठरी के भीतर रख कर रेणुका ने कहा—'और क्या आज्ञा होती है ?'

गदाधर ने हाथ जोड़ कर कहा—कुछ भी कहने का मुँह यहाँ रहने दिया तुमने। आते ही तूफान उठा दिया। अब तुम जा सकती हो। हम थोड़ा विश्राम करना चाहते हैं—एक घंटे के बाद कष्ट करना ! हाँ, थोड़ा-सा जल······कष्ट तो होगा पर लाचारी है। हम बाहर जा नहीं सकते। हाय रे प्रभुनारायण······ ।"

सुन्दरी रेणुका की अवस्था कोई पच्चीस साल की रही होगी। निकट ही के एक मेले से उसके वर्तमान उपपति महावीर सिंह उसे उड़ा लाये थे। वह एक संभ्रान्त कुल की लड़की अवश्य थी पर मेले में से भगाने के बाद उसे छः मास तक प्रायः तीन दर्जन अड्डों में घुमाया गया और इस तरह गुण्डों के दर्जनों अड्डों में घूम लेने के बाद और अकथनीय अत्याचार सह लेने के बाद वह एक मुसलमान एक्केवान के हिस्से में पड़ी। उसने उसे एक साल तक अपने साथ रक्खा और लात-जूतों से खूब ठोक-पीटकर सुधारा। तदन्तर एक चकलेवाली के हाथों में वह पड़ गई—पड़ क्या गई बेंच डाली गई। वहीं से गदाधर के सर्वहारा भाई महाबीर सिंह उसे अपने यहाँ फिर से उठा लाये। पन्द्रह साल की उम्र से लेकर बीस साल की उम्र तक नरक यन्त्रणा भोगकर जब रेणुका नरक के योग्य बन गई तो वह महाबीर सिंह की दुकान की रखवाली करने लगी। चोरी और पाकटमारी की आदत के कारण महाबीर

सिंह प्रायः फरार या जेल में ही रहते थे और चाय की दुकान अपने कटाक्षों के बल से रेणुका चलाती थी। शहर के आवारे और गुण्डे रेणुका की दुकान के खरीदे हुए गुलाम थे तथा गदाधर भी जब कभी टपक पड़ता था और दो चार दिन आतिथ्य ग्रहण करके, चलते समय आँखों में आँसू भरकर विदा होता था।

जब रात हो गई तो रेणुका आई और बोली—'और कुछ चाहिये।'

गदाधर ने कहा—चाहिये तो अवश्य रेणुका रानी, किन्तु शायद मेरे विनोद भैया को कुछ परहेज हो।

रेणुका ने कहा—परहेज? आज तक मैंने किसी को ना कहते नहीं सुना। आपके भैया भी कैसे इन्कार कर सकते हैं।"

इतना कहकर जब रेणुका जाने लगी तो विनोद की नाक ने यह साफ-साफ अनुभव किया कि उसके सुन्दर मुँह से देशी शराब की कड़ी गन्ध आ रही थी। घृणा से उसका मन भर गया और गदाधर की ओर वह देखने लगा।

गदाधर ने कहा—भाई, हम सर्वहारा हैं। संसार के जितने नियम कानून है, उन्हें पैरों से रौंदकर ही तो हम आगे बढ़ेंगे। ये सभी कानून शोषकों ने बनाये हैं, हत्यारों ने बनाये हैं। अपने बनाये हुए नियम-कानूनों की रक्षा में ये रहते हैं। जब हम इनकी रक्षा की दीवारों को तोड़ डालेंगे तो फिर बिल खोद कर निकाले हुए गन्दे चूहे की तरह ये हमारे सामने दौड़ने लगेंगे और हम इन्हें सहज ही ठिकाने लगा देंगे। माता का भी तो यही आदेश है—ताण्डव नृत्य करो, विषपान करो······।

विनोद ने कहा—'सर्वहारा' के मानी हैं 'आवारा'? तुम

क्या कह रहे हो गदाधर ! मैं तो बहुत ही संकल्प-विकल्प में पड़ गया हूँ।

गदाधर अच्छी तरह आसन जमाकर बैठ गया तर्क करने के लिये और बोला—तुम जिन्हें अवारा कहते हो, चोर लुच्चे कहते हो, वे ही तो देश के पक्के सर्वहारा हैं। इन्हें इस परिस्थिति में पहुँचाया किसने, जरा यह तो सोचो ? जो जज बन कर न्यायालय की प्रतिष्ठा रखता है, वह क्या इनसे अच्छा है, जो प्रोफेसर बनकर कालेजों में शिक्षा का प्रचार कर रहा है, वह क्या इनसे उच्च है ? कभी नहीं—! जब देश पर आफत का पहाड़ टूट पड़ता है, ये आवारे अपने को होम कर देते हैं ! फ्रांस की राज्यक्रान्ति का इतिहास पढ़ो।

विनोद चुप लगा गया। रेणुका दोनों हाथों में दो बोतल शराब और एक छोकरे के कन्धे पर बड़ा-सा थाल उठवाये आई। विनोद का सारा शरीर काँप उठा। रेणुका के पाँव डगमगा रहे थे। वह आते ही गदाधर की खाट पर बैठ गई और बोली—भोजन और शराब की दो बोतलें हाजिर हैं। थक गई—दुकान पर आज दिन भर भीड़ रही।

गदाधर होठ चाटता हुआ बोला—धन्य हो तुम रेणुके ! तुम सी गृहलक्ष्मी जिसके घर में होगी वहाँ साक्षात् स्वर्ग···।

रेणुका ने नशे के झोंक में गदाधर के कन्धे पर एक हल्का धौल जमाकर कहा—"चुप रहो जी, गृहलक्ष्मी लेकर बसाने की इच्छा हो तो चलते क्यों नहीं। महाबीर सिंह मेरे कौन हैं—बाप या भाई ?"

विनोद से बैठा न गया वह उछलकर खाट से उठ खड़ा हुआ और बोला—'मैं आया !'

गदाधर ने दोनों हाथ पसार कर कहा—अरे बाहर न जाना···कहीं साला प्रभु नारायण······।

विनोद ने घोर तिक्त स्वर में कहा—मुझे परवा नहीं है—देखा जायगा।

जब विनोद चला गया तो गदाधर ने कहा—अभी पक्का नहीं हुआ है। है बड़े काम का आदमी।

रेणुका लेट गई और दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोली—मुझे तो ऐसे आदमियों से डर लगता है। दिन भर में न तो एक बार हँसा और न एक बार खुलकर बोला।

गदाधर ने कहा—रेणुका, मैं तो तुम्हारे ही लिये दौड़-दौड़ कर आता हूँ—क्या तुम्हें विश्वास होता है ?

रेणुका ने गदाधर के हाथ को अपनी ओर खींचकर अपने हृदय पर रख दिया और कहा—इससे क्यों नहीं पूछते ? मैं क्या बतलाऊँ ?

× × ×

खुली सड़क पर आकर विनोद ने देखा दो सुन्दरी छोकरियाँ रेणुका की चाय की दुकान पर बैठी चाय के प्याले वितरण कर रही हैं और रसलुब्ध मधुपों की टोली जुटी हुई है। वह एक क्षण खड़ा होकर स्टेशन की ओर चला गया। प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक टहल लेने से उसमें ताजगी आ गई। उसने प्रयत्न किया कि वह लौटकर फिर अपने सर्वहारा भाई गदाधर के निकट जाय पर घृणा के मारे उसका मन बेहद झुँझला उठा था। वह लौटकर प्लेटफार्म पर बैठ गया। धीरे-धीरे रात होने लगी। पिछली रात को एक ट्रेन आई, जो ट्रेन उसे मनोहर के दर्शन करा सकती थी। वह स्वानाविष्ट की तरह उठा और टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। उसके बिस्तर-कपड़े गदाधर की ही कोठरी में रह गये जिनकी उसे चिन्ता न थी। गाड़ी खुली और रात भी समाप्त हो गई। ऊषा की मनोरम ललाई के आँगन में दौड़ती हुई

गाड़ी आगे बढ़ने लगी। ओस से भींगी हुई प्रकृति की शोभा विनोद की आँखों के सामने स्पष्ट होने लगी। वह चुपचाप बैठा रहा—उसका मन इस वेग से आगे दौड़ रहा था कि गाड़ी की तेज चाल उसे धीमी जान पड़ती थी। सन्ध्या समय जब वह स्टेशन पर उतरा और एक लारी पर चढ़कर शहर के एक प्रधान चौरस्ते पर उतरा तो हरनन्दन बाबू ने उसे देखा पर उनकी आँखों ने धोखा खाया या उनके अविश्वास ने उन्हें धोखा दिया, यह कहना कठिन है।

× × ×

प्रातःकाल जब रेणुका ने गदाधर को जगाया तो उसके सिर में भयानक दर्द हो रहा था क्योंकि पाँच छः मास के बाद उसने एक साथ ही २।३ बोतलें शराब गले के नीचे उतारी थीं। उठने से अनिच्छा प्रकट करता हुआ गदाधर रेणुका का हाथ पकड़कर खींचने लगा तो वह बोली—कुछ होश भी है, दिन चढ़ रहा है। तुम्हारे मित्र कहाँ गये ? सारी रात नहीं लौटे।

गदाधर ने बड़बड़ाकर कहा—किसी शराबखाने या चकले में वह साला भी पड़ा होगा।

रेणुका ने धीरे से कहा—यह मुआ अपने-ही जैसा संसार को भी समझता है।

---

(२२)

वीणा अखरोट की जाति की स्त्री थी—पत्थर जैसे छिलके के भीतर मीठा गूदा। वह स्वयम् अपनी इस कमी को जानती थी, अपने इस दुःखदायक दोष को समझती थी पर लाचार थी। तुनुकमिजाजी आदत ने उसे सदा सब से दूर रक्खा। कितने बनर्जी, चटर्जी, बोस, गुप्त आये और गये। अनगिनत

मिस्टर, महाशय, बाबू खदेड़े जा चुके—इनका लेखा रखना कठिन है। मनोहर को स्वयम् वीणा ने खींचकर अपनी भावना के मन्दिर में बन्द कर लिया। इसका पता जब मनोहर को चला तो उसने एक दिन हँसते हुए अपनी डायरी में लिखा—

"वीणा सुन्दरी है और सुशिक्षिता भी पर संस्कृति से उसे कोई वास्ता नहीं है। वह पूरी बंगालिन नवयुवती हमारे जैसों से खेलना चाहती है, उल्लू बनाना। यही उसने अपने यौवन के आरंभ से किया है। स्नेह के साथ सरलता चाहिये, बिल्कुल तीर की तरह सीधापन न कि जलेबी जैसा चक्करदार तमाशा। मैं किसी से घृणा नहीं करता, ऐसी आदत भी नहीं है। वीणा को मैं एक सुन्दरी के रूप में देखता हूँ, एक रमणी के रूप में पहचानता हूँ, एक मनोरमा संगिनी के रूप में शायद पसन्द भी कर सकता हूँ, पर जी नहीं चाहता कि उसे माँ, पुत्री, बहन या जाया के रूप में स्वीकार करूँ। वह भी शायद इन शुद्ध तथा आर्य सम्बोधनों से घिनाती होगी। उसके समाज का संस्कार ही ऐसा है—वह भारत के लिये एक भौगोलिक भूल है। न्यूयार्क के बदले भगवान ने उसे यहाँ को भेज दिया......।"

इतना लिखकर मनोहर रुका और बार बार अपनी पंक्तियों को पढ़ने लगा, इतने ही में मनोरमा ने कमरे में प्रवेश किया। आज उसके अंग-रक्षक हनूमान मि० चौधरी नहीं थे। निराला शृँगार और बिल्कुल प्राणघातक अदा। डायरी के पेज बन्द करके मनोहर ने कहा—स्वागतम्।

मनोरमा दरवाजे पर खड़ी खड़ी बोली—धन्यवाद। मैं समाज मन्दिर में जा रही थी। रास्ते में आपका यह खूबसूरत बँगला पड़ता है......।

मनोहर ने कहा—तो आपका स्वागत् मैं बँगले की ओर से ही करता हूँ। किसी बहाने सही, आपका साक्षात्कार तो संभव हुआ। आज आपके "वीरभद्र" नजर नहीं आते!

वीणा ने कुछ लज्जित-सी होकर कहा—"बीरभद्र" कौन हैं, मैं उन्हें नहीं जानती।"

मनोहर ने कहा—बैठिये तब न बतलाऊँ।

वीणा यही चाहती थी। वह बैठ गई और उत्सुक आँखों से मनोहर की ओर देखने लगी।

मनोहर ने कहा—आपके अंग रक्षक मि० चौधरी! मैं उनसे बहुत डरता हूँ।

वीणा ने आँखें नचाकर कहा—'ओ' Yes समझी! वे एक निरीह प्राणी हैं, उनसे आप क्यों डरते हैं।

मनोहर ने कहा—आपने क्या कहा, निरीह प्राणी? राम, राम—यदि मि० चौधरी जैसे जीव निरीहों की गणना में आने लगें तो फिर भयंकरों के लिए नई परिभाषा की जरूरत पड़ जायगी। खैर, छोड़िये इस तर्क को—आपने मन्दिर-भजन, पूजन का शौक कबसे किया? मैं तो समझता था कि आप धर्माधर्म के बन्धन को समाप्त कर चुकी—हैं।

वीणा कुछ सोच विचार में पड़ गई और बोली—मनोहर बाबू, मनको, आकुलमन को कहीं न कहीं तो टिकाना ही पड़ता है।

वीणा के इन शब्दों ने मनोहर के सामने उसके हृदय का जो चित्र स्पष्ट कर दिया उस चित्र ने उस भावुक युवक के भीतर भावना का ज्वारभाटा-सा ला दिया। मनोहर ने हठात् बीणा के हाथ पर अपना हाथ रखकर कहा—व्याकुलता का कारण?

वीणा का सारा शरीर झनझना उठा और गाल लाल हो

गये। उसकी आँखें शराबी की तरह हो गईं। वह अपने भीतर एक बार विवशता का अनुभव करती हुई बोली—यदि आप बिना मुझसे पूछे ही समझ पाते तो मैं विशेष सुखी होती।

यह दूसरा प्रहार था जो सीधे जाकर अपने निशाने पर बैठा। मनोहर ने आवेश में आकर कहा—अब हम एक दूसरे को पहेलियाँ न बुझाया करें तो अच्छा।

वीणा अपने दूसरे हाथ से अपने हाथ पर रक्खे हुए मनोहर के उत्तप्त हाथ को पकड़ती हुई बोली—मैंने हिन्दी नहीं पढ़ी है पर सुना है कि—

तुलसी बाँह गरीब की जो धोखेहु छुइ जाय।

× × ×

दिन समाप्त होगया था। वीणा चली गई। मनोहर को ऐसा लगा कि वह एक बहुत ही बड़ी बाजी हार गया। उसने अपनी डायरी के असमाप्त पेज पर दृष्टि डाली, एक बार फिर से पूरे पृष्ट को पढ़ कर कमरे में इधर उधर टहलते हुए वह चिन्ता निमग्न होगया। क्या वीणा जैसी स्त्री के साथ उसकी जीवन यात्रा हो सकती है? नहीं—नहीं—नहीं—हजार बार, लाख बार नहीं। तो उसने उसे धोखा दिया। धिक्कार का एक गम्भीर घोष मनोहर के रोम रोम में व्याप्त हो गया। वह सोचने लगा, बहुत ही तेजी से सोचने लगा कि वीणा के सामने परिस्थिति को स्पष्ट कर देना उसके लिये उचित होगा। वह साफ साफ शब्दों में वीणा से कह दे कि न तो मैं तुम्हें प्यार कर सकता हूँ और न हमारा वैवाहिक नाता ही जुड़ सकता है। वीणा विवाह का बन्धन तो पसन्द भी नहीं करती। वह घोंसले बनाने से घृणा करती है, वह चाहती है नील गगन में अपने चित्रित पंख फैला कर उड़ना और सुनहले दिन की समाप्ति के उपरान्त किसी सघन कोमल पत्तियों

वाली डाली पर प्रभात के सपने देखती हुई रात व्यतीत कर देना। अब केवल प्रेम का प्रश्न रह जाता है—यह सौदा बिल्कुल मँहगा नहीं है और खास तौर से मनोहर जैसे राजकुमारों के लिये, जिसकी कृपा के लिये सुन्दरियाँ थिरकती रहती हैं। जो हो, पर, मनोहर उन तत्वों का बना हुआ नहीं था जिनमें मानवता कम और मानवता की ढोंग अधिक रहती है।

"तुलसी बाँह गरीब की जो धोखेहु छुई जाय"

मनोहर के कानों में बज्र निनाद की तरह रह रह कर गूँजता रहा और इधर रात भी आगे बढ़ती गई—घड़ी ने १० बजने की सूचना दी।

मनोहर के हृदय पर वीणा की स्मृति क्रमशः भार बनती चली गई। सप्ताह बीतते न बीतते मनोहर ऊब उठा। मानव सदा छुटकारा चाहता है। वह एक भार से छुटकारा पाने के लिये प्रायः दूसरा भार लाद लेता है। मनोहर ने अपने हृदय पर जब आकुलता के भार का अनुभव किया तो उसने वीणा का सहारा लिया और जब वीणा भार हो गई तो वह भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। वीणा नये नये शृङ्गार करके अपने हतभागे शिकार के सामने जाती पर शिकार का जीवन मोह इतना बढ़ गया था कि वह मरने को राजी नहीं किया जा सका। जब मनोहर की उदासी का कुछ कुछ अनुभव वीणा को हुआ तो वह शीशे के सामने जाकर खड़ी होगई। उसने देखा उसके यौवन का तूफ़ान पूर्ण ओज में गरज रहा है, अंग अंग से जो कसकसाहट और रस विह्वलता फूटी पड़ती है, वह भी उरूज पर है। इतना ही नहीं आँखों में का विष भी ज्यों का त्यों है तथा होठों में, मुस्कान के रूप में जो नरकाग्नि हर घड़ी धधका करती थी वह भी धाँय-धाँय जल रही है।

फिर कोई कारण नहीं कि कुमार मनोहर सिंह की हत्या अनाथों की तरह नहीं की जा सके। वीणा मुस्कराई और फिर लौट कर गद्दीदार कुर्सी पर बैठ गई। कमरे की बन्द खिड़कियों से हवा टकरा कर सायँ-सायँ कर रही थी और उसके भीतर उसकी व्यक्त भावनायें लज्जा और भय की दीवारों से टकरा कर सायँ-सायँ कर रही थीं। वीणा ने एक उपन्यास उठा कर पढ़ना आरंभ किया जिसकी प्रधान नायिका अपने उपपति को लेकर, रात को दीवार फाँद भाग खड़ी हुई थी और स्टीमर पर आधी रात को उस अभागे भगोड़े से बल पूर्वक विवाह करके सारे झंझट को समाप्त कर दिया था। वीणा ने सोचा कि मनोहर यदि उठा कर ले भागने योग्य होता तो वह भी उपन्यास लेखकों के लिये एक सनसनी पैदा करने वाला 'प्लाट' छोड़ जाती।

धीरे धीरे दोपहरी आई और मि० चौधरी के परिचित जूतों की मच-मच-ध्वनि उसके कानों में पड़ी—घृणा और झुंझलाहट से उसका सारा शरीर आकुल हो उठा। मि० चौधरी जब जब वीणा के यहाँ आते थे, बड़ी सजावट के साथ आते थे। उस दिन उन्होंने कालेज के छोकरों जैसी स्वच्छ और साफ पोशाक पहनी थी। उनकी स्त्री शान्ती बीमार थी और इसी आनन्द में उन्होंने पुराने दाँतों के सेट को फेंक कर नये दाँत बनवाये थे। सिर के बालों को भी खेजाब में भली भाँति काले किये थे और दिन में दो बार मूँछ दाढ़ी पर उस्तरे फेर कर उन्होंने अपने को बिल्कुल छोकरा के रूप में परिणित कर लिया था। स्त्री की सख्त बीमारी ने फिर किसी नई नवेली के घूँघट उठाकर चाँद देखने के लिये उन्हें उत्साहित किया था। वीणा कुढ़ गई और कुर्सी से उठती हुई बोली—आइये चाचा! कहाँ रहे? वीणा के इस कहाँ रहे प्रश्न ने मि०

चौधरी को पुलकित कर दिया। यह सोच कर वे पुलकित हो उठे कि उनका अभाव वीणा को अब खलने लगा है!!'

चौधरी ने कहा—तुम्हारी सखी बीमार हैं। वही पेट में दर्द, मतली, सिर में चक्कर !

वीणा ने चिन्तित होने का नाटय करती हुई कहा—क्या कहा आपने, चाची बीमार हैं ?

चौधरी ने आसन ग्रहण करते हुए कहा—वीणा, मैं बहुत बार तुम्हें समझा चुका, यह चाचा, चाची, मामा, मामी मध्य-युग की सभ्यता······! तुमने गंदे और मूर्ख हिन्दुस्तानियों की तरह चाचा, कहना सीख लिया है।"

वीणा ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—तो तुम्हारी राय क्या है, यह साफ साफ क्यों नहीं कहते ?

चौधरी का कलेजा धक से करके रह गया। वे बोले—तुमने कालेज की शिक्षा पाई है, भारतीय सभ्यता तो जंगलियों की सभ्यता है। हाँ, बंगाल की बात मैं नहीं कहता।

बंगाल का नाम लेते ही उनका सारा शरीर आनन्द से सिहर उठा।

वीणा ने कहा—आज मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि तुम पक्के यूरोपियन हो चाचा! मैं तो तुम्हें चाचा ही कहूँगी, तुम मेरे चाचा हो भी—पिता जी के बाल्यबन्धु और उनके स्कूल क्या पाठशाला के भी सहपाठी। मैं हाथ जोड़कर विनय करती हूँ, अपने हाथ पाँव अधिक मत फैलाओ······ भगवान् से भी डरा करो।

निर्लज्ज की तरह अट्टहास करते हुए मि० चौधरी ने कहा—भगवान्···हो हो हो हो···भगवान् को लेनिन ने वर्षों पहले कत्ल कर दिया। उसकी लाश साइबेरिया के मैदान में पड़ी-पड़ी

सड़ भी गई होगी। तुम भी विचित्र लड़की हो वीणा, एकदम विचित्र ! समझदारी का सहारा लो···समझी ?"

चौधरी के जाने के बाद वीणा को असफल क्रोध के कारण रुलाई सी आने लगी। वृद्ध चौधरी का प्रेम संलाप उसे विषवत् लगा। उसके पिता, जो एक अत्यन्त कृपण और तुच्छ मनोवृत्ति के व्यक्ति थे इस बात को पसन्द करते थे कि लड़की यदि चौधरी के गले मढ़ दी जाय तो लाभ ही लाभ है। वीणा झुँझलाती और बार-बार चौधरी के सामने इस बात को दुहराया करती कि वह उनकी लड़की है, वे उसके चाचा हैं, पितावत् हैं पर चौधरी का ध्यान इन 'तुच्छ' रिश्तों की ओर न था वे तो वीणा की उभरती हुई जवानी, घातक कजरारी आँखें और गोरे गालों पर खेलने वाली ललाई को ही देखा करते थे।

---

(२३)

वर्षा की अन्धकारमयी रजनी !

आकाश बादलों से घिरा हुआ था और घनघोर वर्षा के रुक जाने के बाद की ऊमस से प्रकृति आकुल-व्याकुल हो रही थी। गंगा के दूसरे छोर पर जो गहन वन था उसके दो हिस्सों में दो तरह के परस्पर विरोधी दृश्य उपस्थित थे। वन के मध्य में गदाधर अपनी सर्वहारा सेना के साथ दो तीन ग्रहन वृक्षों के नीचे पड़े हुए थे। अधिकांश सर्वहारा बीमार थे—महीनों से वे भाग रहे थे। सुबह कहीं तो रात को कहीं। घोस, बोस, बनर्जी, चटर्जी, राय, दास आदि सर्वहारा प्लिहा, यकित, मलेरिया आदि से कातर होकर आश्रय की खोज में बहुत ही कातर हो रहे थे किन्तु गदाधर का आदेश ही ऐसा था कि आगे बढ़ो,

आगे बढ़ो, आगे बढ़ो—रुकना सर्वहारा धर्म के विपरीत है। रात को जब बादल गरजने लगे और फिर वर्षा के आसार नजर आने लगे तो धीरे-धीरे खिसकता हुआ शचीन गदाधर के निकट पहुँचा जो समाधि की अवस्था में सीधा तनकर बैठा था और 'रेणुका' को कैसे सदा के लिये हस्तगत् कर लिया जाय, मन ही मन इसी की योजना बना रहा था। शचीन ने कातर स्वर में कहा—गदाधर दादा !

कोई उत्तर नहीं मिला तो रुआसा-सा होकर शचीन ने फिर धीरे से कहा—दादा, ओ दादा !

गदाधर गम्भीर स्वर में—"मा, शत्रुनाशिनी, दश प्रहरण धारिणी मा" कहता हुआ समाधि से स्वाभाविक अवस्था में आया। शचीन के निकट दूसरा सर्वहारा नन्दगोपाल घोष भी रेंगता हुआ पहुँचा। गदाधर ने कहा—मा, अब प्रकाश चाहिये, हम तैयार हैं।

नन्दगोपाल ने शचीन को छू दिया। गदाधर ने फिर 'स्वगत्' किया—सुन रहा हूँ वज्र निनाद हो रहा है, देख रहा हूँ, शत् शत् उल्कायें गरजती हुई हमारी ओर आ रही है—मा; एक बार तू भी अपने सिंह पर······अरे बाप रे बाप !

शचीन और नन्दगोपाल उछलकर पीछे हट गये तो गदाधर ने स्वस्थ होकर कहा—कुछ नहीं, कुछ नहीं, माँ परीक्षा ले रही थी। भयं, सर्वहारा के हृदय में भय कहाँ से ?कौन है रे ?

शचीन ने कातर स्वर में उत्तर दिया—दादा हम हैं।

गदाधर के जी में जी आया। उसने अन्धकार में शचीन और नन्दगोपाल को शेर या भेड़िया इसी तरह का कुछ समझा था। गदाधर ने गले में पर्याप्त माधुर्य लाकर पूछा—क्या पूछते हो पगले ! अहा, तुम दोनों माता के श्रेष्ठ पुत्र हो—देश तुम्हारी ओर देख रहा है।

शचीन ने कहा—दादा, कब तक छिपे रहें। मेरी पीठ पर से एक बड़ा-सा साँप सरसराता हुआ चला गया। कल नन्दगोपाल को बिच्छू ने डङ्क मारा और आज सबेरे मैं शेर से बाल-बाल बचा! इस स्थिति का अन्त होना चाहिये। हम जेल में ही अच्छे थे—भागने का फल बुरा हुआ! मैं... ...अब आत्महत्या कर लूँगा दादा... कसम से......।

गदाधर ने कहा—यह तपस्या है, मेरे पगले बच्चो। मूर्ख और पाजी धनिकों की छाती पर चढ़कर जो कुछ हम प्राप्त करते हैं वह पर्याप्त है। सुख से रहो, आनंद से विचरण करो। माँ कल्याण करेंगी। देश को तुम्हारी आवश्यकता है।

नन्दगोपाल ने रोकर कहा—दादा, हम मर जायँगे। इस तरह चोरी-डकैती करते-करते नाकों दम हो गया है। अब ऐसे जीवन से पिंड छुड़ाना चाहते हैं दादा!

गदाधर ने कहा—मोह! माँ, इन बच्चों के हृदय में बल का संचार करो। युद्ध के समय अर्जुन को भी मोह हुआ था और महाराणा प्रताप भी घबरा गये थे। चिन्ता मत करो बच्चो! माँ हमारे पथ के काँटों को बुहार रही हैं—सुनो उनके झाड़ू की आवाज !!!

नन्दगोपाल ने कहा—हम आत्म-समर्पण करेंगे, अब सहा नहीं जाता। किसी दिन साँप या बाघ के आगे बलिदान होने से अच्छा है कि दस-बीस साल जेल काट कर......।

गदाधर ने दोनों कानों पर हाथ रखकर कहा—माँ, माँ, माँ, इन्हें सुबुद्धि दो माँ!

जोर से बादल गरजा और पानी का एक जोरदार बौछार आया। शचीन और नन्दगोपाल उछलकर अपने घने वृक्ष की छाया में घुसे। तत्काल भयंकर वर्षा शुरू हो गई। अन्धकार

का रूप भयंकर हो गया। रह रह कर बिजली काले-काले मेघों को फाड़कर नाचने लगी। गदाधर सिकुड़कर बैठ गया। उसके निकट ही एक फरार था जो उसका मित्र, साथी और पक्का सर्वहारा था।

सर्वहारा ने कहा—तुम कब तक इस तरह भागे फिरोगे।

गदाधर ने कहा--मैं क्या करूँ। चाय की दुकान से भाग कर तुम्हारे अड्डे पर पहुँचा और वहाँ ये अभागे लड़के मिल गये और साथ ही साला प्रभु नारायण ·····हे भगवान् उसे ठिकाने लगाना ही पड़ेगा।

उस सर्वहारा ने कहा—प्रत्येक दिन हमारी स्थिति खतरनाक होती जा रही है। डाके और इसी तरह के कुकर्म करते-करते मैं तो ऊब उठा हूँ। कालेज छोड़ने के दिन से ही फरार हूँ और सर्वहारा बनकर देश-मुक्ति के नाम पर देश को नरक बना रहा हूँ।

गदाधर ने कहा--अब किया क्या जाय। मैं भी ऊब उठा हूँ, पर रास्ता नजर नहीं आता। मैं छोड़कर भागता हूँ तो ये साले लड़के पीछा करके फिर पकड़ लेते हैं। पुलिस और इन नालायकों के चलते कहीं टिक नहीं पाता।

सर्वहारा ने कहा—अब इस गंदे दल का अन्त कर दो··· इस तरीके से अपने को तो हमने नष्ट किया ही, साथ ही देश की संस्कृति का भी खून·····।

गदाधर ने भीतर ही भीतर छटपटाकर कहा—अरे····· रास्ता बतलाओ, मैं भागूँ। जीवन नाम की कोई चीज नहीं रह गई·····त्यागी हुई स्त्री की तरह जिन्दगी से अब सुख की आशा ·····अरे देखो, तो वहाँ कौन-सी चीज चमकी?

दूर की एक झाड़ी के भीतर एक बार प्रकाश की एक किरण चमक कर शेष हो गई। गदाधर की तेज नजरों से वह अस्वा-

भाविक प्रकाश की चमक छिपी नहीं रही। वह घबराकर बोला-देखो, मैं ··· समझता हूँ, वे आ गये। तुम चुप क्यों हो गये? अरे वही 'प्रभु नारायण' हमारा शत्रु।

उस सर्वहारा ने उदास-सा होकर कहा—आने दो गदाधर, मैं स्वागत करूँगा। इस भयानक रात को वे यहाँ क्यों आने लगे—उफ् कैसी वर्षा हो रही है?—दो तो एकाध बीड़ी ···।

"जहन्नुम में जाओ तुम"—गदाधर चिल्ला उठा—"हम सब पकड़े जायँगे। भागने का भी तो कोई उपाय नहीं रहा। सलाई जलाकर विपत्ति को क्यों दिखलाते हो बनर्जी?"

दूसरे तेजस्वी सर्वहारा भी उछल उछल कर गदाधर के निकट पहुँचे और अन्धकार में आँखें गड़ा-गड़ाकर एक दूसरे को देखने लगे। गदाधर ने सहसा हतज्ञान सा होकर कहा—अब तो खैर··· हम साहस से काम लेंगे।

एक सर्वहारा ने कहा—साहस? अब तो पटाक्षेप का अवसर आ गया भैया।

जो बनर्जी सर्वहारा गदाधर के निकट बैठा था वह शांत स्वर में कहने लगा—किसी के पास सलाई होगी ···! मित्रो, चिन्ता भय से हमें ऊपर उठना चाहिए।

गदाधर और दूसरे सर्वहाराओं को असमय का यह वेदांत बहुत ही बुरा लगा क्योंकि अब तो स्पष्टरूप से अनगिनत टार्चों की तीव्र प्रकाश रेखायें चारों ओर से चमचमाने लगी थीं और झाड़ियों के भीतर से खड़खड़ाहट की आवाज आ रही थी। हवा और वर्षा का वेग भी बढ़ रहा था। जितने सर्व-हारा थे, कातर और भीत होकर गदाधर को घेर कर खड़े होकर सभी शीत, भय और विकलता से काँप रहे थे। एक बनर्जी स्थिर भाव से, स्थित प्रज्ञ की तरह अपनी जगह पर बैठा था

और कह रहा था—छिः छिः भय देखकर तुम अधीर हो रहे हो ·····छिः छिः !

पुलिस दल ने अपना घेरा छोटा करना आरम्भ किया और फिर बन्दूक की फायरें भी होने लगीं। गदाधर दोनों हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाने लगा—"ठहरो-ठहरो हम आत्म-समर्पण कर रहे हैं।"

बनर्जी अचानक अपनी जगह से उछला और रिवाल्वर से अन्धाधुन्ध पुलिस की ओर फायर करता हुआ एक ओर भाग खड़ा हुआ—अन्धकार के पर्दे में छिप गया।

पुलिसवालों में अव्यवस्था फैल गई और भगदड़-सी मच गई। बनर्जी भाग निकला।

× × ×

जो कुछ होना था तत्काल समाप्त हो गया। सर्वहाराओं का दल पुलिस के कठोर घेरे में चला गया और बनर्जी के आक्रमण से तीन चार पुलिस वाले आहत हुए, एक की स्थिति गम्भीर हो गई। आहत सिपाहियों और सर्वहाराओं के भीत कातर दल के साथ पुलिस वाले जंगल से जब बाहर हुए तो पूर्व दिशा के बादलों से छनकर ऊषा की ललाई झलक रही थी। वर्षा रुक गई थी और मेघ भी थके हुए से तितर-बितर हो रहे थे। चलते-चलते रायबहादुर प्रभु नारायण सिंह ने गदाधर से कहा मित्र, बहुत दिनों पर मिले ?

गदाधर ने खीस काढ़कर कहा—हुजूर·····हें हें हें मैं··· मैं·····।

प्रभुनारायण ने कहा—वह जो भागा, उसका नाम तुम्हें बतलाना होगा !

गदाधर ने सोचकर कहा—उसका नाम ? मैं बतला सकता हूँ।

प्रभुनारायण ने बड़े आग्रह से कहा—हाँ, हाँ, कहो। मैं तो पूछ ही रहा हूँ।

खाँस कर एक बार अच्छी तरह गला साफ करके गदाधर ने कहा – उसका नाम है 'विनोद कुमार'!

चौंककर प्रभुनारायण ने कहा—कौन विनोद कुमार? वकील हरि बाबू का लड़का?

गदाधर इस तरह बोला मानों कोई उसका गला घोंट रहा हो—जी हाँ।

---

(२४)

वर्षा की धुँधली संध्या!

पक्की सड़क जो रेलवे स्टेशन से सीधे गावों के बीच से हुई ग्रैंडट्रङ्क से मिल गई थी, संध्या के धुँधलेपन में डूब रही थी। दिन का अन्त हो चुका था और थोड़ी देर के लिये वर्षा ने मानो विश्राम किया था। वृक्षों की पत्तियों से पानी की बूँदे टपक रही थीं। सड़क के दोनों ओर के खेत जल-मग्न थे। विनोद ट्रेन से उतर कर खुली सड़क पर आगया और एक बार रुक कर सोचने लगा। वह घर जाना चाहता था। माता, पिता, भाई और··· और··· मनोरमा! उफ़!! मनोरमा—मनोरमा को वह अपने मन से जितना दूर फेंकना चाहता था वह उतनी ही घर करती जा रही थी। स्नेह के द्वारा नहीं, प्रेम या रस के सहयोग से नहीं, मनोरमा घृणा से, वितृष्णा और तिरस्कार के द्वारा विनोद के अन्तर में धीरे धीरे स्पष्ट होती जा रही थी। मनोरमा विनोद की भाभी थी—।

विनोद जब स्टेशन से उतर कर सड़क पर आया तो उसके

सामने परिवार की अनेक मानव मूर्तियों को अपने पीछे ठेल कर मनोरमा की मूर्ति झिलमिला उठी। वह जितना भी प्रयत्न करता कि मनोरमा को वह खदेड़ कर, तिरस्कार के हाथों से ठेल-ढकेल कर माता, पिता, भाई की पंक्ति के पीछे पहुँचा दें उतना ही असफल होता। विनोद अपने को यह स्वीकार करवाना चाहता था कि वह माता के स्नेह से खिचकर आया है, पिता और भाई के प्रेमरज्जु में बँधकर यहाँ तक आया है पर वह ऐसी एक भी बात को प्रधानता नहीं दे सका। उसका मन चीख चीखकर कह रहा था कि नहीं—नहीं—नहीं नहीं! गदाधर का साथ छोड़कर विनोद सीधे हरिद्वार की ओर गया और वहाँ कुछ दिनों तक एकान्त वास करके जब ऊबा तो उसने घर की राह ली। मनोहर की याद भी उसे सताया करती थी, किन्तु उसने मन पर जोर जबरदस्ती करके मनोहर का वहाँ से निष्काशन तो नहीं कर दिया। हाँ, उसकी याद को निर्बल अवश्य बना डाला। मनोहर की याद ज्यों ज्यों निर्बल होती गई मनोरमा की मूर्ति उसकी जगह पर उभरती गई, स्पष्ट होती गई। उसने मनोरमा के चित्र को अपनी मां के, अपने पिता और भाई के चित्रों से छिपा डालना चाहा, पर जब उसे अपने इस हठयोग में विफल होना पड़ा तो वह सीधे घर की ओर चल पड़ा। वह अपने को रोक नहीं सका। विनोद एक बार रुक कर सोचने लगा और मनोरमा के प्रति अपने हृदय में घृणा को पूर्ण वेग से जगाने का प्रयत्न करने लगा पर उसे हार कर रुक जाना पड़ा। संध्या ने रात का रूप धारण करना आरंभ किया था और बदली भी घिरी आ रही थी। बूँदा-बूँदी होने ही वाली थी। विनोद सीधे घर की ओर चला। उसे २-३ मील जाना था। हवा के झोंके आने लगे और बिजली भी कौंधने लगी। विनोद आगे बढ़ा,

और इधर से घटायें भी उमड़ घुमड़ कर चलीं। अन्धकार ने अपना रूप विस्तार किया।

विनोद आगे बढ़ा और जोर के वर्षा शुरू होगई। वह भींग रहा था पर उसकी गति में तेजी नहीं आई, अपनी ही विचार धारा में डूबता उतराता विनोद धीरे धीरे गाँव की ओर बढ़ा। उसका सारा शरीर भींग चुका था और हवा के झोंको के साथ पानी की बौछारें उसके उनप्त चेहरे पर आ रही थीं। विनोद खोया सा, आत्म-विस्मृत या स्वप्नाविष्ट सा लगातार चलता ही गया और इधर घटायें पूरी तेजी से बरसती गईं, दोनों में से किसी को भी विराम न था।

प्राय: दो घंटे के बाद वर्षा रुक गई। विनोद गाँव के निकट पहुँच गया—उसे अपने घर की ऊपर की मंजिल की खिड़कियाँ नजर आने लगी जिनमें से प्रकाश की धारायें बाहर फूट पड़ती थीं। सब से पहले उसकी दृष्टि मनोरमा के कमरे की खिड़कियों पर पड़ी—उसका कलेजा धक् से करके रह गया। वह रुका और चेहरे का पानी रूमाल से पोंछ कर बड़बड़ाया—यह नहीं हो सकता। मैं उस राक्षसी... से बातें भी नहीं कर सकता।

"राक्षसी" शब्द के उच्चारण से विनोद के सामने मनोरमा का कोई डरावना या घृणित रूप प्रकट नहीं हुआ बल्कि उसके हृदय में एक गुप्त और तीव्र आनन्द की ही लहर दौड़ गई। "राक्षसी" शब्द की सारी भयानकता क्यों और कैसे शेष होगई थी, यह विनोद को तनिक भी पता न चला। वह मन ही मन झुँझलाया। रुक कर देखने लगा—काली काली घटाओं से आकाश भरा हुआ है, हवा बन्द है और अन्धकार में डूबे हुए वृक्ष सदेह पिशाच की तरह खड़े हैं। गाँव भी अन्धकाराच्छन्न है केवल उसी के पक्के दुमंजिले घर

की खुली खिड़कियों से प्रकाश निकल रहा है। विनोद रुक कर कल्पना की आँखों से देखने लगा—मनोरमा, रूपसी मनोरमा इस समय बैठी होगी, उसके गोरे गोरे सुन्दर कपोलों को रोशनी चूम रही होगी। वह अपने सुन्दर और कोमल हाथों से जिसमें मेंहदी लगी होगी······उफ्! विनोद का सिर चकरा गया। उसने अपने आपको धिक्कारा और दोनों हाथों से अपने चकराने वाले सिर को अच्छी तरह दबा लिया। वह आगे बढ़ा और इसी तरह बढ़ा मानों 'चोर' चोरी करने के उद्देश्य से आगे बढ़ रहा हो। अब वह गाँव के निकट पहुँच गया। सामने ही उसका घर था और राधा-कृष्ण के मन्दिर की ऊँची चूड़ा उसे स्पष्टता-पूर्वक दिखलाई पड़ रही थी। उसका हृदय धड़कने लगा, दोनों पैर मानो मनों वजनी होगये जिन्हें आगे खिसकाना उसके लिये कठिन था। वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ा होगया, घोर अन्कार में अपने को छिपाकर। विनोद अपने आपको न केवल दूसरों की नजरों से ही छिपाना चाहता था, बल्कि वह अपनी नजरों से भी अपने को दूर और छिपा हुआ रखना चाहता था। रात कुछ अधिक बीती। वह चुपचाप वृक्ष के नीचे खड़ा खड़ा अपने घर की ओर देखता रहा। वह अपने भीतर आगे बढ़ने के लिये साहस का संचय करता था, पर उसे इस प्रयत्न में भी सफलता नहीं मिली। वह झुँझला कर बड़बड़ाया—बुरा हो······मैं इतना कमजोर क्यों होगया। मैंने कौन सा अपराध किया है······क्या पाप किया है।

उसने तर्क करके अपने को यह समझाना चाहा कि उसने कोई अपराध नहीं किया। घर का प्रत्येक द्वार उसके लिये खुला है। वह जाता क्यों नहीं। साल-दो-साल घर से अलग रहना, दूर रहना कोई अपराध नहीं है, कोई दोष नहीं है।

विनोद ने अपने उत्तप्त ललाट को अच्छी तरह अपनी दाहिनी हथेली से रगड़ा और आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। वह भींगा हुआ था और ठंढी हवा से उसे कष्ट भी हो रहा था। वह वृक्ष के नीचे से निकला और साहस करके घर की ओर चला। वह चाहता था कि उसकी चाल स्वाभाविक हो, उसके चेहरे के भाव स्वाभाविक ही रहे। उसने प्रयत्न किया कि वह इस तरह अपने दरवाजे पर पहुँचे कि देखने वालों को यह न जान पड़े कि वह घबराया हुआ, डरा या लज्जित है। स्वाभाविक रूप में ही वह आया है। कुछ कदम आगे बढ़ने पर विनोद को अनुभव होने लगा कि उसका संचित किया हुआ साहस उसका साथ छोड़ रहा है पर वह काफी आगे बढ़ चुका था—अब वह अपने दरवाजे पर के प्रत्येक व्यक्ति को देख और पहचान रहा था। उसने देखा, कई अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं और एक बेचैनी-सी फैली हुई है। वृद्ध हरनन्दन बाबू व्यग्रभाव से इधर उधर घूम रहे हैं और सिर झुकाये उसके भाई प्रमोद एक कोने में बैठे हैं। विनोद ने रुक कर यह दृश्य देखा और वह धड़धड़ाता हुआ अपने दरवाजे पर चला गया—उसके भीतर उद्वेगजन्य स्फूर्ति आ गई।

संक्षेप में घटना इस प्रकार है।

प्राय: एक मास पहले मनोरमा ने कुछ ऐसी चीज परिवार के मूक तिरस्कार और तटस्थ व्यवहार से ऊबकर खाली थी जिसका फल उसका मरण होता, पर तात्कालिक उपचार ने उसके प्राणों को जाने से तो रोक तो दिया पर शरीर छलनी हो गया। वह एक बार आराम होकर फिर खाट पर गिरी और तेज ज्वर के साथ उसके मुँह से खून आना शुरू हो गया। भय के मारे—कानून के आतंक से—शहर से डाक्टर नहीं बुलाये गये और गाँव के ही पीयूषपाणि घुरहू पाण्डे

चिकित्सा करने लगे, जिन्होंने पहले उसकी प्राण रक्षा की थी। उपेक्षा के साथ उसकी चिकित्सा शुरू हुई और घृणा के साथ मनोरमा ने किसी प्रकार की औषध खाना अस्वीकार कर दिया। देखते-देखते रोग का रूप ध्वंसक हो गया और घुरहू पांडे ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। जिस समय विनोद अपने दरवाजे पर पहुँचा, मनोरमा के हृदय की धड़कनों की गिनती हो रही थी।

विनोद को देखते ही पगले की तरह हरनन्दन बाबू ने कहा—"तुम आ गये।"

विनोद ने सिर झुका लिया। उससे कोई उत्तर देते नहीं बना। प्रमोद ने अपनी सूजी हुई और लाल आँखों को एक बार ऊपर उठाकर विनोद की ओर देखा और फिर दीर्घस्वास त्यागकर सिर झुका लिया। नौकर एक दूसरे का मुँह देखकर चुप लगा गये।

घबराये से हरनन्दन बाबू ने विनोद को सिर से पैर तक देखकर पूछा—तुम कहाँ थे विनोद ? सब शेष हो गया—सब शेष !

विनोद काठ की तरह खड़ा रहा। उससे कुछ भी बोला न गया।

हरनन्दन बाबू ने कहा—अपनी माँ को सान्त्वना दो। प्रमोद ? देखते नहीं······अरे तुम सो गये क्या ?

प्रमोद कराहता-सा बोला - देख रहा हूँ ! विनोद है—इतने दिनों तक कहाँ रहे विनोद ? अब आये जब······।"

विनोद ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। उसका हृदय उमड़ रहा था—वह रोना चाहता था, पर रुलाई कुछ इतनी बड़ी थी कि वह न तो आँखों की राह निकल सकती थी और न कंठ से ही फूट सकती थी। वह उसके हृदय पर ही उमड़ती-

घुमड़ती रही और अस्थि पंजरों को फाड़कर बाहर निकलने के लिए जोर मारती रही। विनोद पसीने से तर हो गया। वह मुड़ा और अन्तःपुर की ओर जाने का प्रयत्न किया तो सहसा हरनन्दन बाबू चीख उठे—अरे, वहाँ मत जाना ! अभी ठहरो ...हा भगवान्।

विनोद घबरा कर दो कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया ! अन्तःपुर से सम्मिलित स्वर में रोने की आवाज आई !

× × ×

रात शेष हो रही थी और विनोद दरवाजे पर की एक कुर्सी पर सिर झुकाये बैठा था।

मनोरमा संसार में नहीं रही। एक हल्की हिचकी के साथ उसके प्राण पखेरू शून्य में उड़ गये। उसके दुःख, सुख, हँसी, रुदन, पीड़ा, व्यथा, मान, अपमान, प्रेम-विराग और साथ ही स्वर्ग नरक का अन्त हो गया। विनोद ने अपनी चारों ओर किस महाशून्यता का और हाहाकार का अनुभव किया उसका वर्णन व्यर्थ है। हरनन्दन "हाय" कर के पागल की तरह एक खाट पर बैठ गये और प्रमोद उठ कर अपने कमरे में चला गया। रोने चिल्लाने की विधि भी तुरन्त समाप्त हो गई—अन्तःपुर में शान्ति छा गई। विनोद को यही मलाल था कि वह मनोरमा को उसकी अन्तिम घड़ी में भी नहीं देख सका—उसे उसके निकट तक जाने ही नहीं दिया गया। गाँव की स्त्रियों का झुंड आने लगा और बड़े बूढ़े भी एक-एक करके आने लगे, प्रयत्न करके रोनी सूरत बनाये। कुछ लोगों ने आते ही राय दी कि—"प्रमोद बाबू का विवाह तत्काल हो जाना चाहिए।"

अभी मनोरमा की लाश घर में ही पड़ी थी—वह उठाई नहीं गई थी, किन्तु समाज के हिताहित की चिन्ता करनेवालों

का ध्यान उसकी विधुर पति के विवाह की ओर था। जो गई वह तो गई ही—उसकी चिन्ता व्यर्थ है, उसका सन्ताप अकारण है।

विनोद चुपचाप अपनी कुर्सी से उठा। उसने एक बार अंगड़ाई लेकर चारों ओर देखा। रात समाप्त हो चुकी थी और आकाश में ऊषा की सुनहली विभा फैल रही थी। ठंढ़ी हवा के झोंके आ रहे थे। भींगी हुई प्रकृति में कुछ-कुछ जीवन की झलक दिखलाई पड़ने लग गई थी।

विनोद ने एक बार दीर्घ श्वास त्याग अपने निरानन्दमय घर की ओर देखा। वह चल पड़ा। सड़क पर न ,जाकर खुले खेतों को पार करता हुआ पक्की सड़क पर आ गया और वहाँ से स्टेशन की ओर मुड़ा। स्टेशन पर पहुँचते ही प्रायः एक दर्जन सशस्त्र पुलिस ने विनोद को घेर लिया। पहले तो वह अचकचाया पर फिर मुस्करा कर चुप लगा गया।

---

(२५)

विनोद को थाने से सीधे जेल भेज दिया गया !!!

जेल की जिस कोठरी में वह रक्खा गया, वह छोटी-सी थी और वह अकेला भी था। पहले तो वह घबराया कि किस अपराध में क्यों उसे पकड़ा गया है पर तत्काल उसने अपने आपको स्वस्थ कर लिया। मनोरमा के निधन से उसके हृदय का धरातल बदल गया था—वह अपने आपको 'पथराया हुआ' अनुभव करता था। हर्ष, शोक से परे विनोद की स्थिति हो गई थी। कष्ट ने, मानसिक पीड़ा ने हद से आगे बढ़कर हवा का काम किया था। विनोद जेल की कोठरीं मे आकर

अपने को शान्त और सुखी अनुभव किया। थाने पर उसे बतला दिया गया था कि वह दफा ३०२ का कैदी है; क्योंकि अमुक जंगल, में अमुक तारीख का रात को 'सर्वहारा' दल की गिरफ्तारी के समय गोलियाँ चलाकर एक पुलिस मैन की हत्या उसने की थी और कइयों को आहत कर दिया था। विनोद ने चौंककर अपने ऊपर लगाये गये इस मिथ्या लांछन को सुना। उसने अपना कोई बयान नहीं दिया। वह स्थिर भाव से सब कुछ सुनता रहा और अन्त में बोला—'किस ने कहा कि मैंने गोलियाँ चलाई ?

दारोगा गुर्रा कर बोले—'बकबाद करते हो ?'

विनोद चुप लगा गया और उसकी चुप्पी उत्तरोत्तर कठोर होती गई। जेल में रहते समय उसके रोदनव्यग्र पिता और भाई मुलाकात करने आये; किन्तु उसने किसी से भी मिलना उचित नहीं समझा। वह अकेला रहना चाहता था; क्योंकि उसे एकान्त की आवश्यकता थी—एकान्त उसके लिये बरदान था। रात को छत से लटकी हुई लालटेन टिम-टिम करके जलती तो विनोद चित्त लेट कर उससे बातें करता। वह पूछता—लालटेन, मनोरमा तुम्हारी ही तरह जलती-जलती एक दिन बुझ गई।

लालटेन कहती—और तुम्हारी भी तो यही गति होगी, अभागे ?

विनोद फिर कराह कर पूछता—मैं अब छुट्टी चाहता हूँ, बहिन लालटेन।

लालटेन उत्तर देती—जब तक तेल और बत्ती है, तब तक तो जलते ही रहना पड़ेगा भैया! जो जलने से जलता है वह जलता ही रहता है। यह एक मानसिक खेल था जो विनोद के लिये अत्यधिक प्रिय हो गया था। और दूसरी कोठरी में—

सी० आई० डी० के आफिसर और गदाधर का दरबार हो रहा था। गदाधर ने छाती पर हाथ ठोककर कहा—वह विनोद था, विनोद ! मैं उसे जानता हूँ, कौन कहता है कि ·······।

चालाक पुलिस आफिसर ने कहा—भाई गदाधर, मैं भी बङ्गाली हूँ। मेरे हृदय में भी तुम्हारी ही तरह देशानुराग है। मैं तुम्हारा हिताकांक्षी हूँ। तुम यदि मुखबिर········मैं कहता हूँ, अपने को बचालो और फिर स्वच्छन्दता-पूर्वक देश की सेया करो। इन नालायक छोकरों को कर्मफल भोगने देना चाहिये।

गदाधर आँखों में आँसू भरकर बोला—माता का यही आदेश है भाई ! मैंने गैरकानूनी मजमें का कभी भी साथ नहीं किया। इन सारी डकैतियों को मेरे मत्थे मत मढ़ो—तुम्हें माँ की शपथ है।

दारोगा ने जीभ काट कर कहा—हरे, हरे, क्या यह भी सम्भव है। मैं भी तुम्हारा देश-भाई हूँ, बंगाली ! यह देखो, मेरे दाहिने बाजू पर गौर निताई का चित्र·······।

आँखों में भक्ति विह्वलता लाकर दारोगा ने कोट के ऊपर से ही गदाधर को ढोलकनुमा एक लम्बा-सा ताबीज टटोलवा कर कहा—मैं शपथ खाता हूँ। सच्ची बातों का पता लगते ही········सभी छूट जायँगे। तुम तो सब से पहले। धर्म के नाम पर मुखबिर बनो········मैं तुम्हें धर्म-रक्षा के लिये अपना साथी बनाता हूँ।

× × ×

और तीसरी कोठरी में—

ननी गोपाल वगैरह बन्द हैं। एक सर्वहारा बोला—गदाधर निरपराधी विनोद के गले में फाँसी क्यों डलवा रहा है ?

दूसरा सर्वहारा बोला – श्यामपदमुखर्जी गदाधर का भांजा जो है ! क्या अपने भांजे को वह फाँसी दिलवा दे ? विनोद है हिन्दुस्तानी और गंदा………… यार, यहाँ बीड़ी नहीं मिलती ! है किसी के पास एकाध बीड़ी ?

× × ×

विनोद का समय केवल अपने आप से प्रश्नोत्तर करने में और मनोरमा के चित्र बनाने और मिटाने में कटने लगा। वह चुपचाप बैठा-बैठा विविध प्रश्नों पर विचार करता। मनोहर और पुष्पा—दोनों मुलाकात करने आये किन्तु विनोद ने पहले स्वीकृति देकर फिर 'नाहीं' कर दी। जेलर अपने इस चुप और शान्त कैदी की ओर विशेष सतर्क दृष्टि रखता। विनोद की चुप्पी भले ही स्वाभाविक हो पर जेलर या जेल अधिकारी उसे तूफान-पूर्ण स्थिति समझते थे। वे मन ही मन विनोद से भय-भीत भी रहते थे क्योंकि वह किसी से न तो बातें करता था और न अपनी कोई इच्छा ही प्रकट करता था।

मनोहर एक 'राजकुमार' था। जेल सुपरिंटेंडेंट से उसने विनोद के सम्बन्ध में सारी बातें बतलाईं और भोजन तथा एक नौकर की सुविधा की व्यवस्था कराकर वह चला गया। मनोहर प्रत्येक दिन जेल सुपरिंटेंडेन्ट के दफ्तर में जाता और विनोद के विषय में पूछताछ करता रहता। पगली पुष्पा—पुष्पा आत्म-विस्मृता सी मनोहर के साथ आती और पगली की तरह चली जाती। वह बोलना भूल गई थी।

विनोद को एक कैदी नौकर के रूप में मिल गया—वह पक्का डकैत था, जो बीस साल से जेल की रोटियाँ तोड़ रहा था ! उसे जन्मभर रहना था लाचारी थी।

विनोद ने अपने नये साथी से पूछा—क्यों जी, तुम कब से यहाँ हो ?

कैदी मँगरू ने कहा—सरकार, कोई बीस साल हुए—अब तो कहीं बाहर जाने की इच्छा भी नहीं होती ! अपना कहकर इतराने का मेरे पास कुछ भी नहीं है।

विनोद ने कहा—क्यों ?

मँगरू कहने लगा—जब मैं जेल भेजा गया तो स्त्री, भाई, तीन-तीन बच्चे और पिता जी लगातार आते रहे। कभी-कभी चाचा और मित्र भी आते थे। धीरे-धीरे एक-एक करके आने वालों की संख्या घटने लगी। एक दिन मेरे भाई ने कहा—"पिता जी का देहान्त हो गया।" दिल पर एक धक्का लगा—आह, कितने भले थे वे। डेढ़ साल के बाद मेरी स्त्री ने आकर सूचना दी कि 'भैया' का देहान्त हो गया। मैं उस दिन जी भर कर रोया, पर उपाय क्या था। फिर तो मरनेवालों का ताँता ही बँध गया। दस वर्ष समाप्त होते न होते सभी शेष हो गये। स्त्री ने भी आना कम कर दिया और एक दो बार जब मेरा लड़का आया और कह गया कि—माँ बीमार हैं, कभी कहता—किसी ब्याह में गई है, कभी कुछ और कभी कुछ। मैं उत्साह का केन्द्र नहीं रह गया। किसी गन्दे और बदबूदार नाले की तरह मेरे जीवन का प्रवाह मन्द-मन्द यहाँ ज़ारी रहा। एक बार बड़ा लड़का आया और बोला—मैं रंगून जा रहा हूँ। मैंने मना किया पर मुझे पता नहीं वह कहाँ गया, क्या हुआ। करीब सात या आठ वर्ष हुए न तो घर से पत्र आया है और न कोई मुलाकात करने आया। मेरे मन का भार भी एक प्रकार से उतर ही गया। अब मैं इस संसार में अकेला हूँ और अकेलापन ही मेरा सब कुछ है—मैं न तो किसी का हूँ और न कोई मेरा है। 'मैं' तो हूँ पर 'मेरा' गायब हो गया।

विनोद की आँखें सहसा छलछला आईं। कैदी दीर्घ श्वास

त्याग कर कोठरी में झाड़ू लगाने लगा। दोपहरी हो गई थी और शरत् काल के नील गगन में चीलों का एक दल तैर रहा था। ठंठी हवा के झोंके आ रहे थे। मँगरू दिन भर विनोद के निकट रहता और संध्या के बाद अपने 'वार्ड' में जाकर सो जाता। दिन पर दिन बीतते गये। न तो मुकदमे की कोई जाँच का विनोद को पता चला और न उसे यही पता चला कि उसकी इस अवस्था का कहीं अंत भी होगा या नहीं। दुर्गा पूजा के शुभ और मंगलमय दिन भी समाप्त होगये अब दीवाली की प्रतीक्षा थी। बाहर रहते हुए विनोद ने कभी दुर्गा पूजा या दीवाली के लिये अपने भीतर व्यग्रता का अनुभव नहीं किया था पर जेल में उसका हृदय रह रहकर तड़प उठता था, यह याद करके कि अगले सप्ताह में दीवाली है और उसके बाद अमुक त्योहार होने वाला है। वह मँगरू से खूब बातें करता और उसकी मनोदशा से अपनी मनोदशा की तुलना करता, कभी प्रसन्न होता और कभी रो उठता। रात को जब वह अकेला रहता तो मनोरमा की छाया मूर्ति उसे कमरे की दीवारों पर, उन दीवारों पर, जिन पर विविध कैदियों ने अपने नाम किसी रोड़े से खरोच कर लिख डाले थे और उनमें से अधिकांश फाँसी पा गये थे या कालेपानी भेज दिये गये, नाचती, थरथराती नजर आती। वह कभी कभी घबराकर हाथ फैलाकर उठता पर उसके हाथ ठंढे पथरीली दीवारों को ही छूकर रह जाते—वह कराह कर अपने कम्बल पर बैठ जाता और फिर चिन्ता में डूबने उतराने लगता। रात व्यतीत हो जाती और मोटे मोटे सीखचों से होकर ऊषा की विभा विनोद की छोटी-सी कोठरी में प्रवेश करती।

———

(२६)

गदाधर ने खुली अदालत में अपने आपको मुखबिर घोषित कर दिया !

उसके निन्दनीय और झूठे बयान के अनुसार विनोद एक खूनी था। उसने अपने शेष सर्वहाराओं को भी बचाने का प्रयत्न किया तथा यह भी प्राथना की कि भविष्य में वह एक नागरिक बनने का प्रयत्न करेगा। विनोद भी अदालत में हाजिर था। गदाधर का अनर्गल प्रलाप सुनकर एक बार तो वह चौंका पर तत्काल अपने आपको उसने स्वस्थ्य कर लिया। उसके पिता, मनोहर सभी उपस्थित थे। विनोद ने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया और अदालत से यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह अपने बचाव का कोई भी प्रयत्न नहीं करेगा। उसके इस अप्रत्याशित रुख से मनोहर तो मूर्छित-सा हो गया। वकील एक दूसरे का मुँह देखने लगे तथा गदाधर ने अपने भीतर लज्जा का अनुभव किया। जब विनोद जेल की बन्द गाड़ी पर चढ़ने लगा तो मनोहर ने रोकर कहा—"भैया, तुम क्यों अपना बलि-दान कर रहे हो ?"

विनोद ने रुखे स्वर में उत्तर दिया—जी कर ही क्या करना है ?

मनोहर ने कहा—तुम्हारी बृद्धा माता और ये……… पिताजी ?

विनोद ने कहा—मैं ठीक रास्ते पर हूँ। इस भार को उतार दो—मुझे शान्ति चाहिये।

मनोहर कहने लगा—क्या संसार में तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती ?

विनोद ने कोई उत्तर नहीं दिया और वह मोटर में घुसकर

सब से पहले बैठ गया। गदाधर भी भीतर घुसा किन्तु वह विनोद के निकट नहीं बैठा—वह दरवाजे के निकट ही बैठा जब कि विनोद उस बेंच की अंतिम छोर पर था। मोटर चली और तारकी गाड़ी जालियों से बाहर के दृश्य खंड खंड होकर झिलमिलाने लगे तो विनोद ने कहा - गदाधर भैया, मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ—धन्यवाद स्वीकार करो।

गदाधर कुछ न बोला तो विनोद ने फिर कहा - भैया, इतनी नाराजी क्यों है ?

गदाधर घबराकर कहने लगा—तुम मेरी हत्या मत करो। मैं पागल हो गया हूँ

विनोद मुस्कराकर बोला - मैं हत्या करूँगा और तुम्हारी ? जो मुझपर उपकार कर रहा है उसकी हत्या मैं कैसे कर सकता हूँ गदाधर भैया !

गदाधर दोनों हाथों से मुँह ढाककर चुप लगा गया और गाड़ी जेल की ओर दौड़ती चली गयी। जेल की निर्जन कोठरी में पहुँचते ही विनोद को ऐसा लगा कि मनोरमा खड़ी है। वह पहले तो अकचकाया पर फिर दीर्घस्वास त्याग कर अपने कम्बल पर बैठ गया। मनोरमा ? वह मनोरम आज कहीं भी नहीं है। जेल की बन्द कोठरी में कहाँ से आ सकती है। विनोद सिर झुकाकर कुछ देर बैठा रहा और फिर लेट गया। उसके साथी मँगरू ने पूछा—बाबू साहब, क्या हुआ ?।

गदाधर की प्रत्येक बात विनोद के दिमाग में हाहाकार कर रही थी—उसे ऐसा बोध होता था कि उसका दिमाग बहुत ही शीघ्र अस्वाभाविक स्थिति में पहुँच कर गुमराह हो जायगा। उसे पागल हो जाने का भय था और वह अपने मन को गदाधर के घोर विश्वासघात की ओर से मोड़कर दूसरी ओर लगाना चाहता था। मँगरू ने फिर पूछा—बाबू साहब, यह

चुप्पी आपको कुतर-कुतर कर खा डालेगी। 'खाओ, पीओ मस्त रहो' का सिद्धान्त हम जेलवासियों के लिए दवा है। आप लगातार चुप रहते हैं, न कभी गाते हैं और न कभी रोते हैं। इस तरह आप अपने को ही भीतर-भीतर खा रहे हैं।

पुराने और अनुभवी कैदी के इस उपदेश को सुनकर विनोद ने कहा—भैया, जेल में रहना क्या तुम्हें प्रिय है ?

नहीं, कभी नहीं—मँगरू ने जोर से सिर हिलाकर कहा—अब मैं ऊब उठा हूँ। मुझसे यहाँ की रोटी सूँघी भी नहीं जातीं, खाना तो दूर की बात है। बीस वर्ष से एक ही तरह की रोटी खा रहा हूँ, गंध, स्वाद और प्रकार किसी में भी अन्तर नहीं आया है। जी ऊब उठा है। रोटी की गन्ध नाक में लगते ही उबकाई सी आने लगती है। मैं अब यहाँ नहीं रह सकता।

विनोद ने दीर्घ निश्वास त्यागकर कहा—यदि मुझे फाँसी नहीं हुई तो मेरी दशा भी यही होगी ?

मँगरू ने कहा—फाँसी पड़ जाना बहुत ही अच्छी बात है। आपको यदि फाँसी हो गई तो कम से कम मैं बहुत ही प्रसन्न हूँगा, क्योंकि मैं फाँसी को बहुत ही पसन्द करता हूँ। एक झटके में ही संसार के उस पार—वाह !!!

"एक झटके में ही उस पार"—विनोद बैठता हुआ बोला—देर नहीं लगती मरने में ?

मँगरू ने अनुभवी की तरह कहा—मानों पचीसों बार फाँसी पा चुका हो—बाबू जी, मैंने देखा है, बस······।

इतना बोलकर मँगरू सिहर उठा। विनोद सिर झुकाकर सोचने लगा तो वह वृद्ध कैदी फिर बोला—फिर सोचने लगे ? मैं कहता हूँ यह आदत छोड़ो बाबू जी ?

विनोद ने मुस्कराकर कहा—तो क्या करूँ ?

मँगरू ने कहा—खूब गाओ, उछलो, कूदो—मन को भुलाये

रक्खो। जो होना है, होकर ही रहेगा। तुम्हारी ही तरह एक नौजवान था जो फाँसी की रात को—सारी रात फाग गाता रहा और रह-रहकर नाचता भी रहा।

संध्या हो गई और मँगरू चलता बना। विनोद पड़ा-पड़ा अतीत से वर्तमान का गँठ बन्धन करता रहा, पर उसकी चिन्ता की बुनावट के प्रत्येक फाँक से मनोरमा झाँकती रही। मनोरमा, मनोरमा, मनोरमा—उसका अन्तर बाहर मनोरमा से से एक बारगी ही भर गया। वह आँखें बन्द करके मनोरमा को देखने लगा। कुछ क्षण बाद भावावेश में आकर विनोद ने कहा—तू मेरी भाभी है पर न जाने क्यों······पापिष्ठे, मरने पर भी शायद मुझे शान्ति प्राप्त करने नहीं देगी।"

घबराकर विनोद उठ बैठा और इधर-उधर देखने लगा। जेल की निस्तब्ध रात। पहरेदारी की डरावनी हाँक और घंटे की कर्कश ध्वनि। विनोद ने सीखचों से झाँक कर देखा, आकाश का जो थोड़ा सा हिस्सा दिखलाई पड़ रहा था वह ताराओं से भरा हुआ था। दिन भर रोदन, क्रन्दन, शोक मिलाप, दुश्चिन्ताओं के बाद कैदी नींद की शान्ति लाभ कर रहे थे और पहरेदार अपने भारी जूतों को मचमचाते हुए इधर उधर घूम रहे थे। इस आतंकपूर्ण सन्नाटेमें विनोद का हृदय रह-रहकर आकुल हो उठता था। उसने छड़ों को पकड़कर खींचा। वे उसके दुर्भाग्य की तरह कठोर थे, अडिग थे। मानों उसका भविष्य छड़ का रूप धारण करके उसे बन्दी बनाये हुए हों। उसने आकुल दृष्टि से दीवारों को देखा।

पत्थर की मनहूस दीवारों ने विनोद को अधिकाधिक उद्विग्न कर दिया। वह फिर अपने कम्बल पर आकर बैठ गया। रात सदा की तरह समाप्त हुई और प्रभात ने जेल के विस्तृत और उस आँगन को अपनी सुनहली विभा से रंग दिया

जिसमें न जाने कितने अभागे, निपराध, कातर और असहाय मानवों के आँसू और रक्त की बूँदे सूख चुकी थीं और मानवों के ही पैरों से रौंदी जा चुकी थीं।

मँगरू ठीक समय पर आ गया और इधर-उधर देखकर धीरे से बोला—एक बात कहता हूँ, यहाँ से भागना चाहते हो बाबू जी ? मैं भी नहीं रहूँगा।

विनोद ने चौंककर कहा—क्या यह सम्भव है ?

मँगरू ने कहा—सब कुछ सम्भव है, यह लीजिये।

वह अपने कपड़ों में से निकालकर सीखचे काटने की रेती देकर विनोद से कहने लगा—हम कई साथियों ने यही तै किया है कि इस नरक से अब निकल जाना ही श्रेयष्कर है। तुम्हारे गदाधर वगैरह पक्के नहीं हैं। वे बहुत ही गलत आदमी हैं।

विनोद गदाधर का नाम सुनते ही गम्भीर हो गया। जिस गदाधर का साथ उसने एक वर्ष तक किया किन्तु वह उसे पहचान नहीं सका, किन्तु यह अनुभवी डकैत कुछ महीनों में ही केवल दूर से देखकर उसका पक्का पता पा गया—आश्चर्य !

विनोद ने रेती को उठाकर अपने कम्बल में छिपा लिया और मँगरू अपने काम में लग गया। नित्य की तरह दिन बीता और रात आई। मनोहर के प्रभाव से जेल में विनोद को पर्याप्त सुविधायें प्राप्त थीं। वह दिन भर इधर उधर घूम सकता था और मनोहर का भेजा हुआ भोजन खा सकता था। उसके पास किताबें भी पहुँच गई थीं तथा नये कपड़े और बिछावन का बंडल भी आ गया। वह यद्यपि इन चीजों से कुछ सुखी हुआ पर वहाँ की एकरसता उसके हृदय को पथराने लग गई थी जिससे उसका मन बेहद ऊब उठा था।

दिन समाप्त हुआ और फिर रात आई। विनोद निकल भागने के लिये कटिबद्ध हो गया।

× × ×

उसी जेल के एक कोने में।

गदाधर अपने साथियों से अलग जिस कोठरी में बन्द था, उस कोठरी का दरवाजा धीरे से आधी रात को खुला और सी० आई० डी० के इन्सपैक्टर ने प्रवेश किया। गदाधर ने घबराकर इस तरह देखा मानों उसके प्राणहरण करने भैंसा पर चढ़े यमराज आये हों। बंगाली इन्सपेक्टर बहुत ही विनय से आकर गदाधर के कम्बल की एक छोर पर बैठ गया। गदाधर इस तरह सिकुड़ कर बैठा मानों उसके सामने विषधर बैठा अपनी डरावनी जीभ लपलपा रहा हो। इधर-उधर देखकर वृद्ध इन्सपैक्टर अघोरनाथ घोष ने कहा—गदाधर बाबू—!

गदाधर ने सूखे होठों को तर करके कहा—हुजूर !

अघोरनाथ अपने स्वर में करुणा भर कर कहने लगा—हम बंगाली बहुत ही अभागे हैं। आपस में फूट रहती है। तुम्हारे साथी—ठहरो नाम बतलाता हूँ।

अपनी बड़ी-सी जेब से नोटबुक निकालकर और टार्च जलाकर अघोरनाथ ने पेज उलटना आरम्भ किया। धड़कते हुए हृदय से गदाधर ने नोटबुक की ओर देखने का प्रयत्न किया, पर भय से उसकी आँखें उस ओर नहीं मुड़ सकीं। अघोरनाथ ने कहा—यह देखो, ननीगोपाल, दिनेशबागची, सत्यरंजन सरकार···हाँ, जी यह सत्यरंजन कौन है ?

गदाधर ने किसी-किसी तरह कहा—चौबीस परगना का रहनेवाला है। कहता है कि······।

अघोरनाथ ने फिर पूछा—और श्यामापद मुखर्जी ?

गदाधर चौंक पड़ा। इसी ने उस जंगल में गोलियाँ चलाई

थीं। अघोरनाथ तेज नजरों से गदाधर के चेहरे की ओर देखता रहा किन्तु प्रकाश के अभाव से वह उतार-चढ़ाव नहीं देख सका। गदाधर ने कहा—मैं इसे नहीं जानता। मैंने तो इसका नाम भी आज तक नहीं सुना। मैं कहता हूँ श्यामपद हमारे दल में कभी नहीं रहा।

अघोरनाथ ने कहा—देखो, मैं भी तुम्हारा ही एक भाई हूँ। मेरी सहायता करो। मैं भी 'सर्वहारा' सम्प्रदाय का ही हूँ। पेट के लिये नौकरी करता हूँ। अवसर आते ही वर्दी उतारकर तुम लोगों का साथ दूँगा। मेरे पितामह······क्या बतलाऊँ ढाका के नवाब की हुकूमत के प्रतिकूल तलवार उठाकर अन्त में फाँसी पा गये। मेरे शरीर में भी वही रक्त है।

अघोरनाथ इतना कहकर तनकर बैठ गया बीर रस के किसी सफल अभिनेता की तरह और लगा जोर से साँस लेने।

भयभीत गदाधर रुआसा-सा होकर कहने लगा—दोहाई हुजूर! काफी पाप कमा चुका हूँ। अब क्षमाकर कीजिये। मैं किसी विषय में कुछ नहीं जानता—मुखर्जी कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है, यह मैं एक दम नहीं जानता। पहले पहल मैं आपके मुँह से उसका नाम सुन रहा हूँ।

अघोरनाथ ने मुस्कराकर कहा—गदाधर भैया, तुम मेरी वर्दी देखकर मुझसे दूर हट रहे हो, पर शीघ्र ही तुम्हें इस जेल से बाहर आकर पछताव होगा। मैं तुम्हारा अपना हूँ और संस्कारवश तुम मुझे अपना शत्रु समझ रहे हो। मुकदमे की छानबीन में जितना समय लगेगा, उतना ही समय तुम्हारे छुटकारे में भी लगेगा। अच्छा, विनोद के विषय में ही बतलाओ—वह किस·········।

गदाधर ने दोनों मुँह ढाँपकर कहा—दया करो। अब मैं

कुछ नहीं बोलूँगा। विनोद को मैं जानता हूँ, उतना अपने बयान में कह दिया—अधिक कुछ नहीं कह सकता।

अघोरनाथ का सारा मन क्रोध से भर गया, पर वह अपना मन व्यक्त करता हुआ बोला—विनोद का पिता जमीन्दार और वकील है। कुमार मनोहरसिंह जो एक छोटा मोटा राजा है, उसकी पैरवी कर रहा है। कालेज में विनोद का चरित्र उज्वल रहा है, पर पता नहीं सर्वहारा दल में वह किस मतलब से आ गया। तुम्हारा दल तो भुखमरों का दल है—तुम चोरी-डकैती आदि करके शराबखाने और जुआखानों की रौनक बढ़ाते हो या वेश्यालयों में नरक भोगते हो, तुममें से प्रत्येक को गोली मार देनी चाहिये।

गदाधर भड़भड़ाकर उठ बैठा और इधर-उधर देखने लगा। अघोरनाथ ने फिर कहा—तुम भी पक्के अभागे हो, मैं चला। सड़ो यहीं—एक बार और आकर पूछ लूँगा।

अघोरनाथा के जाने के बाद गदाधर फूट-फूटकर रोने लगा। उसने मुखबिर बनकर बहुतों के गले में फाँसी का फन्दा डाल दिया था, पर अन्त में उसे निराशा का ही दामन पकड़कर रोना पड़ेगा—विधि का विधान!

गदाधर जी भरकर रो लेने के बाद बोला—हाय विनोद, मैंने व्यर्थ तुम्हारे साथ विश्वासघात किया। इस नालायक ने मेरा सत्यानाश कर दिया। हाय भगवान्……।

---

(२७)

भयानक और निर्जन बन की दोपहरी। फागुन समाप्त हो चुका था और पतझड़े वृक्षों में चैत की मदमाती बयार डोलने लग गई थी। लाल-लाल कोंपलों में बसन्त की मादकता झल-

कने लगी थी। गहन बन के बीच में एक भग्न शिव मन्दिर था। मन्दिर की फर्श को फाड़कर नाना जातीय पौधे बाहर झाँक रहे थे और सीढ़ियाँ टूट चुकी थीं। मन्दिर की चूड़ा ढह गई थी—काई के चलते पूरा मन्दिर खुरखुरा और काला दिखलाई पड़ता था। मन्दिर के भीतर का देवता अतीत की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा था। चमगाडड़ों ने उस मन्दिर को अपना "दिवस बसेरा" बनाया था तथा जंगली कबूतर मन्दिर के मोखों में अपना रैन-बसेरा बनाये हुए थे। मन्दिर के सामने एक सूखा तालाब था। जिसमें बरसात के अवसर पर कुछ पानी दिखलाई पड़ता था और बाकी ऋतुओं में धूल उड़ा करती थी। तालाब का पक्का घाट टूटकर नष्ट हो गया था। बेल, जामुन और जंगली फलवाले वृक्षों से तालाब और मन्दिर घिरा था।

दुनिया की नजरों से अपने को छिपाता हुआ विनोद उसी मन्दिर की शरण में आया। दोपहरी हो रही थी किन्तु पच्छिम क्षितिज से धूल का पीला पर्दा उठ रहा था। विनोद ने हवा का रुख देखकर मन्दिर के भीतर आश्रय ग्रहण करना उचित समझा। वह उद्देश्यहीन यात्री महीनों से अपने को छिपाता हुआ घूम रहा था, जिसके सिर की कीमत पाँच हजार थी—सरकार की ओर से ऐसी ही सूचनायें, छपवाई गई थीं। विनोद को जब यह खबर लगी कि उसका मूल्य ५०००) है तो वह मुस्कराया! जब तक उसने कोई पाप नहीं किया था, कोई समाज-विरोधी पाप नहीं किया था, वह ३५।४० करोड़ की आबादी वाले देश में एक नगण्य प्राणी मात्र था, किन्तु पाप करते ही उसका मूल्य बढ़ गया और बढ़ा भी तो एक दम पाँच हजार !!!

विनोद चुपचाप मन्दिर में घुसा और हाहाकार करती हुई

झाँकी भी मानो उसका पीछा करती-करती आ धमकी। वृक्ष जड़ से उखड़ने लगे और डालियों के टूटने की कर्कश ध्वनि प्रतिक्षण सुनाई पड़ने लगी। अन्धकार छा गया। मन्दिर इस तरह हिल रहा था मानो आँधी के साथ भूकम्प भी आया हो। आँधी की उग्रता जब चरम सीमा पर पहुँच गई तो उसने देखा कि दरवाजे से एक मानव मूर्ति दौड़ती हुई भीतर घुसी और विनोद के ऊपर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ी—चीखती हुई। अन्धकार में विनोद ने टटोलकर देखा वह भय-कातर नारी मूर्ति थी! विनोद का सारा शरीर झनझना उठा। कुछ क्षण बाद वह भय-कातर नारी मूर्ति उठ बैठी किन्तु भय से विनोद से सटकर काँपती हुई बैठी रही। अपने को स्वस्थ करके विनोद बोला—"तुम कौन हो?"

रोती हुई उसने अपना किस्सा शुरू किया—मैं यहीं बकरियाँ चराया करती हूँ······।

इतना कहकर वह रोने लगी, सिसक-सिसककर। विनोद ने अनुभव किया कि वह एक लड़की है। मन्दिर पूरी तरह अन्धकाराच्छन्न था। आँधी पूरी ताकत से गरज रही थी और वर्षा भी आरम्भ हो गई थी—हवा के साथ पानी के तेज बौछार आ रहे थे। वह लड़की विनोद से भय से अधिक सटकर बैठ गई और भीतस्वर में बोली—मेरी बकरियाँ? सभी मर गई होंगी—बाबा बहुत पीटेंगे।

विनोद का हृदय भी करुणा से भर गया। उसने कहा—घबराओ मत! आँधी रुके तो मैं तुम्हारी बकरियों की खोज करूँगा।

उस लड़की ने विनोद का कन्धा हिलाकर कहा—वे मरी नहीं, तुम कौन हो यहाँ?

विनोद ने सहज स्वर में कहा—मैं पथिक हूँ। जा रहा था और आँधी आई।

जैसे ही आँधी का वेग रुका, लड़की का भय भी आँधी के वेग के साथ ही रुकता गया—वह हटकर बैठ गई। दिन समाप्त हो रहा था। आकाश साफ होते ही मन्दिर में थोड़ा-सा प्रकाश आया तो विनोद ने देखा, वह लड़की नहीं पूर्ण नव-युवती है और उसके बेहद स्वस्थ और श्यामवर्ण के भरे हुए चेहरे पर वसन्त की तरह पवित्र यौवन निखरा हुआ है। दोनों गोल और परिपुष्ट कलाइयों में दो मैले चाँदी के कड़े हैं। स्वस्थ शरीर पर एक लाल रंग की मैली और फटी साड़ी है, तथा बाल बिखरे हुए हैं—मानो उनमें न तो कभी तेल डाला गया है और न कंघी फेरी गई है। धूल में पड़ा हुआ हीरा भी हीरा ही है। उसी तरह उपेक्षित यौवन भी यौवन ही माना गया है। मरम्मती यौवन से वह यौवन कहीं अधिक बलवान और सफल होता है जिसकी ओर किसी ने आँख उठाकर कभी देखा भी नहीं और खास तौर से वह यौवन धन प्रकृति की ओर से जिसे मिला है वह भी यह नहीं जानता कि उसे कैसा रत्न मिला है। जिसके जौहरी सड़कों, बाजारों सिनेमा घरों में बिखरे हुए नहीं हैं। विनोद ने एक बार फिर आँखें भरकर उस नवयुवती की ओर देखा जो अपनी निर्दोष आँखों से कभी दरवाजे की ओर और कभी विनोद ओर देख रही थी चकित तथा भयभीत भोलीभाली हरिणी की तरह! आँधी का वेग रुक गया और बादल भी आँधी का साथ देकर बिखर गये—प्रकृति शान्त होगई। नवयुवती ने उठकर दरवाजे से झाँका और आकुलस्वर में कहा—मेरी बकरियाँ? सभी मर गई होगीं। विनोद ने उठते हुए कहा—चिन्ता मत करो, मैं उन्हें खोजता हूँ। वे मरी नहीं होगीं। जंगली जानवर बहुत

ही चालाक होते हैं। वे अपने को प्रकृति के कोप से बचाने की कला जन्म से ही जानते हैं। चलो, मैं उन्हें ढूँढ़ निकालूँ।

नवयुवती के भोले भाले चेहरे पर आत्म संतोष की लुभावनी लहर दौड़ गई। प्रकाश में विनोद ने देखा, वह साँवले रंग की है पर शरीर खूब गठीला है, भरा हुआ और सौन्दर्य उसके सुन्दर गठन पर मानो मुग्ध होकर, मूर्छित होकर पड़ा हुआ है। विनोद आँखें भर कर उस प्रज्वलित नारी सौन्दर्य को नहीं देख सका। उसकी आँखों के सामने शहर की रँगी हुई तितलियाँ—पुष्पा, वीणा आदि नाच उठीं। उसने मन ही मन कहा—छि: कागज के रङ्गीन फूलों का बुरा हो।

सूर्यास्त होने जा रहा था। विनोद उस वन-कन्या के साथ जंगल की ओर चला। उत्सुकता और भय से वह आगे आगे दौड़ी जा रही थी अपने चंचल पैरों से। वह लौट कर विनोद की ओर इस आशंका से देख लेती थी कि कहीं उसका रक्षक पीछे तो नहीं छूट गया। विनोद ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

नवयुवती ने चिल्लाकर कहा—लाली ! अरे वह देखो, दो बकरियाँ वहाँ हैं। वह आनन्द से उछल पड़ी और बकरियों की ओर दौड़ी। विनोद मुग्ध भाव से उसके अनिर्वचीय भोलापन को खड़ा होकर देखने लगा। लाली ने आनन्द विह्वल स्वर में चिल्लाकर कहा—खड़े क्यों हो जी ! अभी छ: बकरियाँ और हैं—उन्हें देखो न किधर गई हैं।

विनोद चौंका और अपनी अवस्था पर लज्जित-सा होकर इधर उधर देखने लगा। लाली बारी बारी से अपनी प्रत्येक बकरी को चूमने और दुलारने लगी और कहने लगी—तू मिल गई। बता तो तेरी बड़ी बहन और बच्चे कहाँ है ? पास की ही झाड़ी में सभी बकरियाँ मिल गईं। विनोद ने लाली को पुकार कर कहा—लाली, यह देखो, तुम्हारी सभी बकरियाँ

यहाँ आराम से बैठी हैं। लाली दौड़ी हुई विनोद के निकट आई और उसकी बाँह पकड़ कर बोली—किधर हैं वे ?

सभी बकरियाँ मिल गईं और लाली की जान में जान आई। वह आनन्द से तालियाँ बजाती और हँसती हुई बोली—बच गई। बाबा, दुश्मन की तरह मारते हैं। बड़ा भारी संकट टल गया—!

इतना बोलते बोलते उसका गला भर आया और विनोद का हृदय दुःख से विचलित होगया। विनोद ने पूछा—बाबा क्यों मारते हैं ?

लाली अपनी भोली भाली आँखें विनोद के चेहरे की ओर उठा कर बोली—माँ, पिता सभी मर गये। बाबा दूर के रिश्ते-दार हैं। मैं वहीं रहती हूँ। वे बहुत ही क्रोधी हैं। मारने लगते हैं तो······क्या बतलाऊँ।

उसने पीठ फेर कर अपने उमड़ने वाले आँसुओं को विनोद की नजरों से छिपाया। तुरन्त लाली ने अपने को संभाल लिया और तेजी से विनोद के सामने घूम कर खड़ी हो गई और बोली—तुम मेरे बाबा को देखो तो डर जाओ। दैत्य की तरह हैं—इतने बड़े। उसने दोनों हाथ उठाकर यह प्रमाणित कर दिया कि उसके बाबा हमसे कम से कम ७ फीट अवश्य लम्बे हैं। विनोद को हँसी आगई तो लाली ने कहा—तुम्हें हँसी आती है। थाली भर भात एक साँस में खा जाते हैं और······

किस्से कहानियों में विनोद ने दैत्य का वर्णन बचपन में सुना था पर लाली का बाबा इस बीसवीं सदी का साक्षात् दैत्य है, इसका ज्ञान उसे पहले न था। सूर्यास्त होगया और लाली अपनी बकरियों के साथ घर की ओर चली। चलते चलते वह रुकी और चिल्ला कर बोली—कल आऊँगी तो

बाबा के और किस्से सुनाऊँगी। यहीं रहना—कहीं जाना मत।

विनोद आत्मविस्मृत सा मन्दिर की ओर लौटा। वह जेल से छड़ काट कर भागने से लेकर आँधी उठने तक की प्रत्येक घटना को एक कतार में रखकर देखने लगा। लाली का भोलापन उसके लिये एक अद्भुत रहस्य था। ऐसी नवयुवती और इतनी आत्मविस्मृता—मानों बन फूल हो! विनोद मन्दिर में रह गया आगामी कल की प्रतीक्षा में जो कल लाली की प्रतीक्षा के कारण बहुत लुभावना हो गया था। आज तक ऐसे सुन्दर 'कल' की प्रतीक्षा विनोद ने कभी नहीं की थी।

---

(२८)

मनोहर को वीणा का एक 'आवश्यक' पत्र मिला। विनोद के भागने का समाचार सुनकर मनोहर चिन्ताकुल था। ऐसी ही कुघड़ी में सुन्दर कागज पर बहुत ही सँभाल कर पत्र लिखा गया वीणा का पत्र मनोहर को मिला। लिफाफा खोलते ही विलायती सेंट की भीनी महक से मनोहर का दिमाग भर गया—नासिका की घ्राण शक्ति सुवास विह्वल हो गई। मनोहर ने पत्र पढ़ा और कहा—'धत्तेरे की!'

इस "धत्तेरे" का श्रोता वहाँ पर कोई और न था। थोड़ी देर के बाद जब पुष्पा आई तो मनोहर ने कहा—पुष्पा, यदि मैं बल पूर्वक नरक की ओर ढकेला जाऊँ तो तू मेरी रक्षा कर सकती है या नहीं—सीधा उत्तर देना, 'हाँ' या 'न' से।

पुष्पा ने भोली भाली सूरत बनाकर कहा—"तुम्हें कौन नरक में ढकेल सकता है?"

मनोहर गम्भीर होकर कहने लगा—बहस मत करो। साफ साफ उत्तर दे सको तो मुझे विशेष संतोष होगा।

पुष्पा डर गई। वह मनोहर से मन ही मन बहुत डरा करती थी। उसका हास्योत्फुल्ल चेहरा उतर गया। वह घबराई सी एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। मनोहर ने फिर अपना प्रश्न दुहराया। पुष्पा अचानक उत्तेजित सी हो गई और बोली—अपना सब कुछ होमकर भी तुम्हें बचाऊँगी—जान से भी बढ़ कर जो कुछ······।

बस, बस—मनोहर मुस्करा कर बोला—बहुत हो चुका। मैं तृप्त हुआ। तुमसे ऐसी ही आशा थी। अब इस पत्र को पढ़ डालो। मैं जरा उस कमरे में जाता हूँ।

पुष्पा के आगे वीणा का पत्र फेंककर मनोहर अपनी खुर-खुरी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ हजामत बनाने चला। सच्ची बात तो यह है कि वह उस समय पुष्पा के निकट बैठ नहीं सकता था जिस समय वह वीणा का पत्र पढ़ती। वीणा के पत्र को दो तीन बार पढ़ कर पुष्पा ने रूमाल से अपने ललाट को पोंछा और वह घबराई सी इधर उधर देखने लगी। पत्र में लिखा था—

"······तुम मेरी रक्षा करो। मि० चौधरी जो एक अहमक और पुराना पाजी है मुझे सदा के लिये समाप्त कर देने पर तुला है। उसकी स्त्री मर गई और मेरे पिता को न जाने क्या क्या उलटी सीधी समझा कर मुझसे विवाह करने का आदेश प्राप्त कर चुका है। मेरे सामने दो ही प्रश्न हैं—यदि मैं अस्वीकार करूँ तो पिता का कोप भाजन बनती हूँ और स्वीकार करने से आत्महत्या जैसा जघन्य पाप लगता है। अच्छा हो कि तुम आगे बढ़कर मेरा उद्धार कर लो। पिताजी भी विशेष बाधा नहीं देंगे और हम सदा के लिये सुखी हो जायँगे। अन्तर जातीय कानून के अनुसार हमारा विवाह होगा, जिसमें तलाक का भी अधिकार है। हम दोनों की स्वतन्त्रता भी बनी

रहेगी और इस आसन्न विपदा से मेरी रक्षा भी हो जायगी। मैं कल प्रातः तुम्हारे निकट गई थी पर न जाने क्यों मेरे भीतर अभी तक भारतीयता का मूर्खतापूर्ण कुसंस्कार बना है—मुँह खोल कर कुछ भी नहीं कह सकी। उत्तर मत देना—मैं स्वयम् आऊँगी स्वीकृति प्राप्त करने। इतना बड़ा आनन्द का संदेश ढोकर मेरे निकट तक पहुँचाते यह मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तुम्हारे मुँह से ही जीवन का सबसे बड़ा आनन्द-सन्देश सुनूँगी········।

मनोहर हजामत बनाकर जब कमरे में आया तो पुष्पा बोली—ठीक तो है? मैं इस सम्बन्ध का हृदय से समर्थन करती हूँ।

मनोहर ने कहा—इसके मानी यह हुआ कि तुम मेरी फाँसी के हुक्म पर जज बनकर अपने दस्तखत और मुहर कर रही हो।

पुष्पा ने मन ही मन डर कर उत्तर दिया—इसमें हर्ज ही क्या है?

मनोहर कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—पुष्पा जैसी लड़कियों को स्त्री कहना अपनी ही बुद्धि के साथ अत्याचार करना है। कानून के आधार पर प्रेम नहीं होता और 'तलाक' का द्वार पहले ही से खोलकर जो विवाह करते हैं, समाज में कानून सम्मत व्यभिचार को प्रश्रय देते हैं—कानून का बहाना बना कर। मैं तुमसे केवल यही जानना चाहता हूँ कि तुम मेरी रक्षा कर सकती हो या नहीं?

पुष्पा ने कहा—एक बार तो कह चुकी। कागज कलम दो तो लिख कर भी दे दूँ। इस संसार में मेरा अपना और है कौन? एक तुम हो और दूसरे हैं परमात्मा!

बोलते-बोलते पुष्पा का गला भर आया। वह कहने लगी—

तुमने ही मेरे सारे हिताहितों का भार आज तक उठाया है। मामा के घर पाली-पोसी गई पर आज जो कालेज से आगे बढ़कर युनिवर्सीटी में हूँ और कल आपके उज्वल भविष्य का स्वागत् करूँगी। वह इन्हीं पवित्र चरणों की कृपा से। मैं ·······और क्या कहूँ।

भावावेश में पुष्पा रो उठी। विनोद का गला भी भर आया। उसने अचानक पुष्पा की बाँह पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया और कहा—"मैं सब कुछ पा गया। आज मैं धन्य हुआ पुष्पा रानी!"

पुष्पा ने कोई वाधा नहीं दी। वह अपने आपको मनोहर की ओर खिंच जाने दिया। क्षणभर में स्वस्थ होकर मनोहर पूर्वस्थिति में आ गया और पुष्पा का चेहरा लज्जा की ललाई से भर कर लाल हो गया। उसने अपने भीतर एक प्रकार की कँपकँपी का अनुभव किया, जिसका अनुभव उसे पहले कभी भी नहीं हुआ। उसे उसकी यह नई प्रकार की कँपकँपी भली लगी!

मनोहर फिर बोला—मैंने तुम्हारे अभिभावक से आदेश प्राप्त कर लिया है। तुम्हारी स्वीकृति की देर है—हम सदा के लिये शीघ्र ही एक हो जायँ तो बीणा की फाँसी की रस्सी से मेरी निष्कृति हो जायगी।

लज्जा से सिर झुका कर पुष्पा ने धीरे से कहा—मैं कुछ नहीं जानती। जो उचित समझो तुम करो।

जिस समय पुष्पा यह कलापूर्ण स्वीकृति दे रही थी उसकी आँखों के सामने हठात् विनोद का उदास चेहरा स्पष्ट हो गया। वह सिहर उठी!

× × ×

एक क्षण में ही पुष्पा का दृष्टिकोण बदल गया। उसने

आँखें उठा कर मनोहर की कोठी को देखा और उसे तत्काल बोध हुआ यह कोठी उसकी है। उसने सामने खड़ी सुन्दर मोटर को देखा और उसे यह जानकर आनन्द हुआ कि वह गाड़ी अब मनोहर की नहीं रही। वर्दी पहने हुए जिन नौकरों को देखकर वह मन ही मन डरा करती थी, उन्हें देखते ही उसका मन आनन्द से भर गया—वे दर्जनों दरवान और फाटक पर रात-दिन अपने भारी बूट मचमचा कर पहरा देने वाले सन्तरी उसके नौकर हैं। क्षणमात्र में ही पुष्पा की दृष्टि में संसार का रूप रंग किसी अज्ञात शक्ति के जोर से बदल गया—वह अपने को पूर्ण और महिमामयी समझने लगी। उसका हृदय गहन और गुप्त आनन्द से इतना भर गया कि उसने अपने भीतर उसकसाहट, बेचैनी और भारीपन का अनुभव किया!

दूसरे ही दिन मनोहर ने युनिवर्सिटी के दफ्तर में जाकर पुष्पा का नाम कटवा दिया और उसे अपने साथ गाड़ी पर सादर बैठाकर चलता बना। चलते समय वृद्ध रजिस्ट्रार ने जिसने अपनी सारी जिन्दगी शिक्षा प्रसार में लगाई थी, कहा—कुमार साहब, लड़कियों के लिये एक होस्टल और चाहिये। मैं तो आपसे मिलने ही वाला था। सिनेट के कई माननीय सदस्य भी आपकी सेवा में जानेवाले हैं।

मनोहर ने लज्जा-अवनता पुष्पा की ओर देख कर कहा—जिन्होंने यहाँ आश्रय ग्रहण करके शिक्षा पाई है, उनसे मैं भी प्रार्थना करता हूँ कि वे एक क्या दो होस्टलों का निर्माण करवा दें। रजिस्ट्रार साहब, मेरे पास क्या है, मैं तो एक मुफलिस व्यक्ति बन गया हूँ।

वृद्ध रजिस्ट्रार ने आशीर्वाद देते हुए कहा—भगवान करें

आपकी यह मुफलिसी अमर हो। विश्वास है कि लक्ष्मी देवी इस प्रार्थना को सुनी अनसुनी नहीं करेंगी।

लज्जा से पुष्पा सिकुड़ कर अधमरी हो गई। मोटर पर बैठते ही उसने मनोहर से कहा—"तुम बड़े शरारती हो। यदि मैं अब इन्कार कर जाऊँ तो?"

मनोहर हँस कर बोला—जिसे विधाता ने अपनी अमर लेखनी में लिखा है, उसे कुल्हाड़ों की चोट से काटने में कौन समर्थ हो सकता है। देखूँ तो कैसे इन्कार करती हो। पुष्पा ने एक बार मनोहर की ओर उस दृष्टि से देखा जिस दृष्टि से उसने आज तक कभी भी उसे नहीं देखा था। कोठी पर पहुँचते ही मनोहर ने देखा, वीणा विकल भाव से बरामदे में बैठी है। वह मोटर रुकते ही तेजी से उठ खड़ी हुई और फिर दीर्घ निश्वास त्याग कर जहाँ की तहाँ बैठ गई। उसने देखा मनोहर हाथ पकड़ कर पुष्पा को सयत्न गाड़ी के नीचे उतरने में सहायता पहुँचा रहा है। वीणा मन ही मन कुढ़कर बड़-बड़ाई—आज तो सह गई इस कलमुँही का यह आदर सत्कार, कल नहीं सह सकूँगी, खैर! साधारण आवभगत के बाद मनोहर ने कहा—वीणा देवी, शीघ्र ही आप एक शुभ संवाद सुनेंगी और मैं हूँगा संवाद-वाहक।

वीणा ने कहा—मैं उसी दिन की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

मनोहर ने मुस्करा कर कहा—तथास्तु! एक दो दिन और धैर्य धारण करें।

वीणा ने जो कुछ समझ कर प्रसन्नता प्रकट की उसकी उलटी दिशा में प्रवाहित होनेवाली घटना की ओर उस अभागी का ध्यान न था पर घटघट वासी परमात्मा सभी कुछ जानते थे, वे मुस्करा कर रह गये।

(२६)

लाली नित्य अपनी प्यारी बकरियों के साथ उस मन्दिर के निकट आती और हँस-खेलकर चली जाती। विनोद नित्य जाने की चिन्ता करता किन्तु उससे जाते पार नहीं लगता। वह अपने मन को तरह-तरह के बहाने बनाकर सन्तुष्ट कर लेता। एक दिन उसने लाली से पूछा—लाली! अब जी नहीं लगता ?

लाली विनोद ने निकट आकर बोली—क्यों? क्या मा याद आती हैं या तुमने भी घर पर बकरियाँ पाल रक्खी हैं।

विनोद ने कहा—दुर पगली! देखती नहीं, दो महीने बीत गये। क्या जीवन भर इसी जङ्गल में पड़ा रहूँ।

लाली ने कहा—क्यों जी, रात को तुम्हें डर नहीं लगता ? बाबा कहते हैं कि रात को जङ्गल में भूतों की बारात निकलती है, चुड़ैलें गाती, बजाती, नाचती आगे-आगे चलती हैं। दैयारी, मैं तो यहाँ नहीं रह सकती।

विनोद उसके अल्हड़पन से झुँझला उठा। वह बोला—भूतप्रेत मैं नहीं मानता। तुम्हारे बाबा बेवकूफ हैं।

लाली ललाट पर भौं चढ़ाकर बोली— क्या कहा, बाबा बेवकूफ हैं ? चलो मेरे साथ। वे नित्य रामायण पढ़ते हैं और मन्त्र पढ़कर गाँवभर के भूत-प्रेतों को भगाते हैं।

विनोद लाली के भरे हुए कन्धे को थपथपा कर बोला—शाबास! फिर तू भूत से क्यों डरती है। बाबा से कहकर यहाँ के भूतों को भी क्यों नहीं भगवा देती ?

लाली ने कुछ सोच कर गम्भीर स्वर में कहा—ठीक कहते हो। मैं उनसे कहकर तुम्हारे लिये भी एक यन्त्र ला दूँगी। बस, बेखटके पड़े रहना—कभी भूत तङ्ग नहीं करेंगे। क्यों

जी, तुम चलो न एक बार मेरे घर पर। बाबा तुरन्त तुम्हें यन्त्र दे देंगे।

विनोद ने कहा—ऐसी भूल मत करना। क्या तू ने अपने बाबा से मेरी चर्चा की है। ऐसी बेवकूफी करेगी तो मैं चला जाऊँगा।

लाली डर कर विनय भरे स्वर में बोली—मैंने कुछ नहीं कहा। विश्वास न हो तो चल कर पूछ लो। मैं उनसे डरती हूँ—बोलती ही नहीं।

विनोद ने हँसकर कहा—पगली, मैं चलकर तेरे बाबा से पूछूँ ?

लाली खिलखिलाकर हँस पड़ी और उछलकर, दूर जाकर, खड़ी हो गई। विनोद मुग्धभाव से खड़ा-खड़ा उस अल्हड़ नवयुवती की ओर देखता रह गया। लाली दौड़ती हुई अपनी बकरियों के निकट पहुँची और और चिल्लाकर बोली—अजी सुनो तो।

विनोद ने कहा—क्या कहती हो ?

तुम थोड़े से पत्ते तोड़ दो—लाली ने कहा—यह लो बाँस और मैं इस चितकबरी का दूध दुहूँ—तुम्हें भूख लगी है न !

विनोद पीपल के पत्ते तोड़ने की धुन में लगा और लाली हरे पत्ते के एक दोने में बकरी का दूध दुहने लगी। काफी दूध दुह लेने के बाद उसने प्रसन्नता से मगन होकर फिर विनोद को पुकारा और कहा—पीलो इसे। इस बकरी का दूध अमृत की तरह मीठा होता है।

विनोद दूध पी गया। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

लाली ने कहा—क्यों जी दूध कड़वा तो नहीं है।

विनोद ने मुस्कराकर कहा—दूध भी कहीं कड़वा होता है लाली !

लाली ने चिन्तित-सी होकर कहा—तो तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों आ गये ?

विनोद ने कहा—हाय, यदि तू इतना समझ पाती तो यह जंगल मेरे लिए स्वर्ग बन जाता। लाली, तू केवल बच्चों की तरह खेल-कूद करना ही पसन्द करती है ?

लाली ने खिलखिलाकर हँसती हुई कहा—तो क्या करूँ, तुम्हारे साथ बैठकर रोया करूँ !

ईश्वर न करे—विनोद ने दीर्घ श्वास त्यागकर कहा—मेरी तरह तुझे रोना पड़े। कल आयेगी न लाली ?

लाली विनोद के निकट चली आई और अपनी कजरारी आँखों को उसके वेदना से भरे चेहरे की ओर उठाकर कहा—दिन निगोड़ा कितनी जल्दी समाप्त हो जाता है। अभी आई थी और देखते नहीं, सूर्यास्त हो रहा है।

क्यों जी, किस महीने से दिन बड़ा और रात छोटी होती है ?

विनोद ने स्नेह भरे स्वर में कहा—यह जेठ का महीना है। इस महीने से लम्बा दिन कभी नहीं होता।

लाली ने कहा—झूठी बात ! रात बड़ी होती है और दिन तो देखते-देखते उड़ जाता है।

विनोद ने अनुभव किया कि उसके हृदय को कोई सुहाल रहा है। वह लाली की बाँह पकड़कर बोला—चलो लाली, मैं तुम्हारे घर पर चलूँ।

लाली आनन्द से नाच उठी और बोली—-मेरी कसम ? चलो न ! मैं तो रोज कहती हूँ—तुम चलते ही नहीं। बाबा तुम्हें नहीं पीटेंगे, आज चलो मेरे साथ। मेरा गाँव तो निकट ही है—उस पहाड़ी के नीचे। वह देखो !

उसने हाथ उठाकर जंगल के छोर पर की पहाड़ी को

दिखला दिया जो एक मील के फासले पर थी। उत्सुक लाली विनोद की बाँह पकड़कर झकझोरती हुई बोली—चुप क्यों हो गये ? चलो—चलते हो ?

विनोद ने दीर्घ स्वास त्यागकर कहा—आज नहीं, और किसी दिन ?

लाली सहसा रुआसी-सी हो गई और मचलकर दूर जाकर खड़ी हो गई।

विनोद मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रह गया। संध्या हो गई थी। हवा के ठंढे झोंके वन के गहन वृक्षों में सिहरन उत्पन्न करते हुए आ रहे थे। लाली विनोद से रूठकर जब जाने लगी तो विनोद पीछे-पीछे चला, कुछ दूर जाने पर लाली ने कहा—अब मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो।

विनोद ने कहा—तुम नाराज हो गई लाली ?

लाली ने मान और क्रोध भरे स्वर में कहा—मैं कौन हूँ तुम्हारी, जो तुम पर नाराज होऊँगी।

विनोद ने कहा—चलो, तुझे कुछ दूर पहुँचा दूँ।

लाली लौटकर विनोद के निकट आई और बोली—तुम लौट जाओ नहीं तो मैं कल से कभी नहीं आऊँगी।

विनोद ने कहा—तू नहीं आयेगी ? क्या ऐसा सम्भव है लाली ?

लाली ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा, कल तुम्हारे लिये महाबीर जी का प्रसाद लाऊँगी और तुम मेरे लिये थोड़े से पत्ते तोड़कर रखना। पत्ते तोड़ने में ही सारा समय लग जाता है, समझे ?

इतना कह कर लाली ने विनोद के गाल पर एक हल्का-सा चाँटा जमा दिया और हरिणी की तरह उछलकर वह दूर भाग गई।

बिनोद ने कहा—यदि मैं भी मारूँ तब लाली ?

लाली ने नाक-भौं चढ़ाकर उत्तर दिया—बड़े बने हैं मारने वाले। मारकर भी देख लो। बाबा से कहकर तुम्हें ऐसा पिट-वाऊँगी कि छठी रात का दूध याद आ जाय।

विनोद को हँसी आ गई। लाली भी खिलखिला कर हँस पड़ी। वह अपनी बकरियों के साथ उच्चस्वर से गाती हुई चली गई और विनोद तब तक खड़ा रहा जब तक लाली का सुस्पष्ट और सुरीला स्वर बिल्कुल शून्य में विलीन नहीं हो गया। दिन का अन्त हो गया था और गोधूलि अपना रूप विस्तार करती हुई सारे बन को निगलती जा रही थी। विनोद मन्दिर में लौट आया। लोहे के मोटे सीखचों वाले दरवाजे को बन्द करके वह फर्श पर ही लेट गया। फर्श तप रहा था और उसके पास कोई बिछावन तक न था। धीरे-धीरे रात आई। सीखचों से होकर हवा के ठंढे झोंके भी आने लगे, वन पुष्पों की भीनी-भीनी महक के साथ।

× × ×

कोई सौ मील की दूरी पर इसी आसमान के नीचे और इसी पृथ्वी पर—!!!

मनोहर ने पुष्पा से कहा—कल हम घर चलेंगे और वहीं सदा के लिये मैं धर्मसूत्र में बाँध दिया जाऊँगा। मेरी पुष्पा रानी बनेगी और मैं "छत्रधर" बनूँगा।

पुष्पा ने मनोहर की ओर देखकर उत्तर दिया—अभी तक शायद तुम मुक्त थे—क्यों ?

———

(३१)

गर्मी बीती और काली कजरारी घटाओं के साथ एक दिन उमड़ती घुमड़ती वर्षा आगई। पुष्पा रानी बनकर मनोहर के राज महल की शोभा बढ़ाने लगी और 'वीणा'—भग्न-मनोरथा वीणा आजीवन कुमारी रहने का प्रण करके अपनी सजी हुई कोठी में विविध मित्रों और अंतरंग मित्रों के साथ जीवन के दिन पूरे करने का प्रयत्न करने लगी। केवल दो-तीन महीनों में ही वीणा, पुष्पा, और मनोहर के जीवन का धरातल विचित्र रूप से बदल गया। शहर की कोठी को किराये पर उठाने का आदेश देकर मनोहर अपने देहाती महल में स्थाई रूप से बस गया। उसकी बृद्धा जननी ने पुत्र-बधू का चाँद जैसा मुखड़ा देखकर तृप्ति की साँस ली। सुख और आनन्द की उथल पुथल के पर्दे पर से विनोद का चित्र लोप होगया। किन्तु जब सावन की घटायें मचलती हुई उसके रैन बसेरा को घेर कर झमाझम बरसने लगी तो उसने लाली से कहा—लाली, तुझे गिनना आता है।

लाली ने अत्यन्त जानकार की तरह गम्भीर मुँह बनाकर उत्तर दिया—क्यों नहीं ?

विनोद ने कहा—अच्छा गिना तो—एक, दो, तीन, चार, पाँच, मैं भी सूनूँ ?

लाली ने अपनी चिकनी और सुन्दर हथेली को विनोद के आगे फैला दिया और छोटी उँगली से लेकर अँगूठा तक पर अपने दूसरे हाथ की तर्जनी रख रखकर गिनना आरम्भ किया—यह देखो, एक, दो, तीन, पाँच, सात ! मैं क्या बेवकूफ हूँ—हुँ ! बाबा ने मुझे गिनना सिखला दिया है।

विनोद हँस पड़ा और उसके फैलाये हुए हाथ की कलाई पकड़ कर बोला—"तू बँदरी है—पूरी बँदरी !

लाली आँखें मटका कर बोली—सो कैसे ?

विनोद ने कहा—इस तरह गिन पगली—एक, दो, तीन, चार, पाँच ! एक हाथ में पाँच उँगलियाँ होती हैं, सात नहीं।

लाली बोली—तुम्हें कुछ नहीं आता। देखो, मेरी बकरियाँ तेरह हैं। क्या मैं इतना भी नहीं जानतीं।

विनोद ने लाली के सिर पर एक हल्की चपत जमाकर कहा—तेरह नहीं—ग्यारह !

लाली सिर सहलाती हुई मान भरे स्वर में बोली—तेरह हों या एग्यारह तुमने मुझे मारा क्यों !

विनोद ने स्नेह भरे स्वर में कहा—मास्टर मारा करते हैं। मैं तेरा मास्टर हूँ। अच्छा सुन—मैं यहाँ फागुन में आया था, यह सावन शुरू होगया—गिन तो कितने महीने हुए ?

लाली ने गम्भीर होकर हिसाब लगाया—फागुन, बैसाख और सावन ! वह आनन्द से चिल्ला कर बोली—महज तीन महीने, देखो मैंने गिन लिया—फागुन एक, बैसाख दो और यह सावन तीन—बस तीन महीने हुए। मैंने ठीक उत्तर दिया—अब मुझे भी एक चपत मारने दो।

विनोद बोला—अच्छा मार ले तू भी एक चपत, पर याद रखना जोर से मारा तो मैं······।

लाली ने 'अच्छा' कहकर मारने के लिये हाथ उठाया पर उससे मारा नहीं गया। विनोद ने कहा—मार भी—देर क्यों कर रही है।

लाली ने कहा—तुम्हारे माँ बाप कोई नही हैं, रोने लगोगे तो फिर कौन मनावेगा। मैं तुम्हें नही मारूँगी—मेरे बाबा ने कहा है कि किसी को पीटना नहीं चाहिये।

माँ, बाप का नाम सुनते ही विनोद का हृदय उमड़ आया और एक बार मृत मनोरमा की संगमर्मर जैसी मूर्ति भी उसके मानस नेत्रों के सामने स्पष्ट होगई। वह उदास होकर बोला—लाली !

लाली अपने चेहरे पर रह रहकर बिखर पड़ने वाले बालों को दोनों हाथों से संभालती हुई बोली—क्या कहते हो !

विनोद दीर्घ श्वास त्याग कर बोला—क्या कहूँ पगली, काश तू मेरी दशा समझ पाती।

लाली रुआसी-सी होकर बोली—मैं पैरों पड़ती हूँ, इस तरह साँस खींच कर न बोला करो।

विनोद ने पूछा—क्यों ?

लाली ने कहा—मेरा जी न जाने कैसा हो जाता है। रुलाई सी आने लगती है।

विनोद ने कहा—अब यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है लाली ! ५, ६ महीने बीत गये।

लाली चिन्तित-सी होकर इधर उधर देखने लगी। वह बोली—यहाँ किस बात का डर है। भूत से तुम डरते ही नहीं और दिन भर मैं भी रहती हूँ। कहती तो हूँ कि रात को मेरे घर.........।

विनोद ने झुँझलाकर कहा—फिर वही पागलपन ! तेरा यह अल्हड़पन कब छूटेगा लाली !

लाली ने बच्चों की तरह उत्तर दिया—मैं अल्हड़पन के मानी नहीं जानती। क्या मैं बेवकूफ हूँ ?

विनोद कहने लगा—सिर से पैर तक तू बेवकूफ है—बिल्कुल अपनी बकरियों की तरह ! इधर उधर उछलती फिरती है—जरा गम्भीरता से सोचने की आदत करो।

लाली वहीं पर आसन मार कर बैठ गई और आँखें बन्द करके ध्यान करने जैसी मुद्रा में बोली—कहो, गम्भीर होगई—अब नहीं उछलूँगी। क्या कहते हो ?

लाली के इस लड़कपन से विनोद मन ही मन झुँझला उठा। वह बोला—जाओ, अपना काम देखो, मैं तुमसे बातें करना नहीं चाहता। तुम कुछ समझती ही नहीं।

लाली उसी तरह बैठी-बैठी बोली—मैं सब समझती हूँ। तुम अब भागना चाहते हो—तुम्हारा यहाँ जी नहीं लगता। सच्ची बात तो यह है कि तुम्हें यहाँ डर लगता है और मेरे बाबा के भय से घर पर भी नहीं चलते। मैं उनसे कह दूँगी कि वे तुम्हें कभी नहीं पीटेंगे। आज चलो मेरे साथ।

इतना कहकर लाली तेजी से उठ खड़ी हुई और विनोद के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर बोली—सुनो जी, कल मेरे यहाँ महावीर जी की पूजा है—तुम्हारे लिये बड़ी अच्छी अच्छी चीजें लाऊँगी। खूब खाना। समझे ?"

विनोद उसके हाथ को अपने कन्धों पर से हटाता हुआ बोला—तू बड़ी नटखट है।

लाली मान से गम्भीर मुँह बनाकर दूर हट गई और बोली—तुम भागने की धुन में हो। तुम्हारी मरजी—मैं भी ननिऔरे जाऊँगी। बाबा कहते हैं कि तुम्हें······अपने नाना के यहाँ जाना पड़ेगा। वहाँ बहुत सी गायें हैं और घर के सामने बाजार है—मैं एक बार वहाँ गई थी।

विनोद चुप लगा गया। लाली बोलती बोलती अपनी बकरियों के निकट चली जो थोड़ी दूर पर चर रही थीं। विनोद ने पुकारा 'लाली'।

लाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पीठ फेर कर बैठ गई और कंकड़ चुनकर दोनों हाथों से उछालती हुई अचल बैठी

रही। विनोद दो तीन बार पुकार लेने के बाद कहा—लाली, एक बात सुन लो।

लाली मानों बोलना ही भूल गई थी। वह अपनी जगह से हिली भी नहीं। विनोद भी झुँझलाकर मन्दिर के चबूतरे पर जाकर बैठ गया। दिन का अस्त हो चुका था। लाली धीरे से उठी और बकरियों को पुकारती हुई जब चली तो विनोद ने फिर पुकारा—लाली।

लाली ने लौटकर देखा भी नहीं। वह चुपचाप आगे बढ़ गई और देखते-देखते गहन बन में घुसकर आँखों से ओझल हो गई। दिन का अन्त हो गया और गोधूलि के बाद रात आई। घटायें उमड़ीं और कुछ देर बरसकर चली गईं। विनोद काफी भींग लेने के बाद उठा और मन्दिर के भीतर चला गया।

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात—सात दिन व्यतीत हो गये। लाली नहीं आई। विनोद नित्य सबेरे उठता और धड़कतते हुए हृदय से लाली की राह देखता। कहीं भी पत्ता खड़कता तो उसका कलेजा उछलकर मुँह को आने लगता—लाली आई, किन्तु तत्काल उसका उद्वेग मनोव्यथा के रूप में बदल जाता। वह जंगल के अन्तिम हिस्से तक दिन में कई-कई बार जाता, किन्तु लाली की छाया भी उसे नजर नहीं आती। वह तरह-तरह की उद्वेगमयी भावनाओं से विकल होता रहता—लाली बीमार पड़ गई या सचमुच उसे ननिऔरे भेज दिया गया। उसके कसाई बाबा ने पीटकर उसे खाट पर पड़े रहने की स्थिति में पहुँचा दिया या······या······। प्रत्येक आशंका विनोद को सही जान पड़ती। अपने आपसे घोर तर्क वितर्क करता हुआ विनोद एक सप्ताह मन्दिर में पड़ा रहा पर लाली की झलक उसे नहीं मिली। रात दिन लाली के लिये व्याकुल रहता-रहता उसे ऐसा लगा कि उसके दिमाग और

हृदय को ज्वर होने लगा है। वह मन ही मन लाली से कहने के लिये, उसे फटकारने के लिए तरह-तरह के तीखे वाक्य बनाता और कभी-कभी वहाँ से चले जाने की भी योजना बनाता पर जाने के पूर्व एक बार लाली को चितावनी दे देने का लोभ वह त्याग नहीं सका। सातवाँ दिन भी समाप्त हो गया।

जब दूसरा सप्ताह शुरू हुआ तो विनोद की आकुलता सीमा पार कर गई। दिन भर जंगल में घूमा करता और थक कर तथा निराश होकर मन्दिर के भीतर आकर लेट जाता। दूसरा सप्ताह भी जब आधा समाप्त हो गया तो एक दिन दोपहर को विनोद ने चौंक कर देखा, लाली नई पीली साड़ी पहने तालाब के उस पार चुपचाप पके हुए जामुन चुन रही है। उसके पास एक छोटी सी टोकरी है। विनोद का हृदय आनन्दोद्वेग से अचानक धड़क उठा। वह धीरे-धीरे चला और लाली से कुछ दूर पहुँच कर रुक गया। लाली जामुन चुनते चुनते विनोद को कनखियों से देखकर मानों अपने आप से बोली--चलो झंझट छूटा। अब बकरियाँ मैं नहीं चराऊँगी······बाबा, कहते हैं तू बड़ी हुई, घर से बाहर न जाया कर।

विनोद ने कहा—लाली, इतने दिनों तक कहाँ थी ?

लाली ने विनोद के प्रश्न पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया--वह सुनी अनसुनी करके बोलती ही गई--मुझे किसी से क्या मतलब। अब बाबा मुझे नहीं पीटेंगे। उन्होंने तुलसीचौरा छूकर कसम खाई है। आज के बाद फिर कभी भी इस भुतहे जंगल में मैं पाँव भी नहीं रक्खूँगी।

विनोद ने व्यग्र स्वर में कहा—लाली, एक बात सुन ले, मै विनय करता हूँ।

लाली ने फिर भी ध्यान नहीं दिया। वह जामुन चुनती हुई आगे बढ़ गई। विनोद फिर बोला—लाली, यह हठ बुरा है। एक बात सुनले, फिर जो जी चाहे करना।

लाली ने लौटकर नहीं देखा पर कहा—क्यों तुम्हारी एक बात सुनूँ? मैं अब किसी की नहीं सुनती।

विनोद झुँझलाकर बोला—देख लाली……। एक प्रार्थना करता हूँ।

लाली ने मौन धारण कर लिया। विनोद कुछ आगे बढ़ा और बोला—लाली, मैं जारहा हूँ—एक बात सुनले, मैं बहुत··· क्या कहूँ तुझे, उफ्!

लाली ने फिर भी लौटकर नहीं देखा। विनोद के बार-बार आग्रह करने पर भी वह नहीं बोली—और जामुन चुनती हुई लगातार आगे बढ़ती चली गई। विनोद के धैर्य और उसकी झुँझलाहट की सीमा नहीं रही, स्वभाव से ही गम्भीर और भावुक विनोद का हृदय कुचल-सा गया—वह भीतर ही भीतर असफल क्रोध और झुँझलाहट के आघात-प्रतिघातों से रुआसा-सा हो कर बोला—अच्छा लाली, अब मैं चला…… तुम्हारा ईश्वर कल्याण करें।

इतना कह कर विनोद तेजी से मुड़ा और मन्दिर की बगल से जानेवाली पगडंडी पर आ गया। वह आगे बढ़ा और तेजी से आगे बढ़ता चला गया। लाली अचानक चौंकी और लौट कर जानेवाले विनोद की ओर देखने लगी। जब विनोद आगे बढ़ गया तो उसने हाथ की टोकरी को नीचे गिरा दिया और पुकारा—सुनो तो, अब मैं नहीं रूठूँगी।

विनोद आगे बढ़ता चला गया। लाली दौड़ी और यह पुकारती हुई दौड़ी—लौट आओ—अब मैं नहीं रूठूँगी। उसकी पुकार क्रमशः रुलाई से भरने लग गई और तत्काल कंठ के

वाष्परुद्ध हो जाने के कारण वह पुकार भी नहीं सकी किन्तु दौड़ती हुई विनोद के पीछे-पीछे जाने लगी। विनोद सुन रहा था कि लाली—अब मैं नहीं रूठूँगी, अब मैं नहीं रूठूँगी, अब मैं नहीं रूठूँगी—चिल्लाती हुई पीछा कर रही है। विनोद ने न तो लौट कर देखा और न रुकने का प्रयास किया। वह पगडंडी से उतर कर गहन बन में चला गया और लाली दौड़ती हुई पगडंडी से सीधे आगे बढ़ गई—अब मैं नहीं रूठूँगी, अब मैं नहीं रूठूँगी।

पुकार जब क्रमशः क्षीण होती हुई, ध्वनि से प्रतिध्वनि बन कर शून्य में विलीन हो गई तो विनोद गहन बन से निकल कर पगडंडी पर आया और वहाँ से सीधे आगे बढ़ गया। दिन का अन्त हो चुका था, किन्तु वह रुका नहीं। आधी रात तक आत्मविस्मृत-सा चलता ही गया किन्तु उसे ऐसा लगता रहा कि लाली की मनुहार उसका पीछा करती जा रही है। वह कभी-कभी अपने दोनों कान बन्द कर लेता किन्तु लाली की पुकार तो उसके भीतर—निगूढ़ अन्तरतम् में गूँज रही थी। कान बन्द करने से क्या लाभ होता। पागल की तरह विनोद खूब तेजी से चला -मानो पुकार उसे खदेड़ रही है और वह भागा जा रहा है। सड़क पर पहुँच कर भी उसने—"अब मैं नहीं रूठूँगी" की मनुहार सुनता रहा। वह दोनों हाथों से अपना सिर थाम कर अचेत की तरह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया—रात शेष होने लगी।

(३१)

संध्या हो रही थी !

मुफ्फसिल के छोटे से थाने के दारोगा साहब आराम से खाट पर बैठे आँखें बन्द किये सोच रहे थे कि कल जो दो अभागे देहाती पकड़े गये हैं, उन्हें सदर के थाने पर भेजना उचित होगा या यहीं मामला निबटा दिया जाय। झगरूसिंह कानस्टेबिल पास बैठा तम्बाकू पी रहा था उसने हुक्का रखकर भोजपुरी बोली में कहा—हुजूर, कल तक उन्हें बन्द रखिये। मैं गाँव वालों को सूचना देकर····· ।

दारोगा जी ने तोंद पर हाथ फेरकर कहा—यह कैसे हो सकता है। चौबीस घण्टे से अधिक हम उन्हें यहाँ रख भी तो नहीं सकते। सरकारी कानून बहुत ही बुरा है झगरू।

झगरू वकील की तरह हाथ मटकाकर कहने लगा—आप डायरी पर अभी कुछ भी दर्ज मत कीजिये।

दारोगा कहने लगा—अब ये देहाती भी पक्के कानूनी हो गये हैं। देखते नहीं—ये साले कुछ बोलते ही नहीं और न इसकी ओर से कोई थाने पर ही आया। डकैती तो जरूर हुई है, पर ये डकैत नहीं हैं। हम इन्हें घर से पकड़ लाये हैं।

बला से—झगरू ने तमककर कहा—आप कानून की रट लगाये हैं। इस जंगली थाने पर रक्खा ही क्या है। हम अपने मुशाहरे के पैसे खा रहे हैं।

दारोगा का शोक उमड़ पड़ा। वह कराहकर कहने लगा—फिर किया क्या जाय ?

झगरू ने कहा—कल फिर गाँव में आप चलिये। दो चार धनी व्यक्तियों का पता मैं लगा चुका हूँ। उन्हें हिरासत में लिया न कि थाने पर लक्ष्मी की वर्षा हो जायगी। यदि सच्चे

डकैतों को आप पकड़ लेंगे तो फिर उपद्रव कौन करेगा। उन्हें आजाद रहने दीजिये।

दारोगा ने तृप्ति की साँस लेकर कहा—तुम्हारा कहना ठीक है। आज एक डकैत आया था और आशा बँधा गया है। मैं उनसे छेड़छाड़ करना नहीं चाहता।

झगरू ने फिर अपना हुक्का उठाकर चिलम की राख झाड़ता हुआ कहा—आप चुप रहिये। मैं पच्चीस साल से यही सब कर रहा हूँ। कानून तो मोम की नाक है, जिधर चाहिये वह नाक उधर ही मुड़ जायगी।

दारोगा गम्भीर स्वर में अपनी सहमति जताकर लेट गया। संध्या हो गई।

हारा थका हुआ विनोद आकर दारोगा के सामने अचानक पागल की तरह खड़ा हो गया।

दारोगा ने देखा—गोरा, गठा हुआ शरीर और फटी कमीज पहने यह कौन है।

वह अचकचाकर उठ बैठा और बोला—"क्या काम है?"

विनोद ने कहा—मैं···मैं एक फरार हूँ।

दारोगा घबराकर खाट से उछलकर खड़ा हो गया और चिल्लाकर बोला—मुझसे मजाक? तुम फरार हो तो यहाँ क्या करने आये हो—उल्लू कहीं का!

विनोद शान्त स्वर में कहने लगा—आत्म-समर्पण करने आया हूँ।

दारोगा फिर चिल्लाया—पागल तो नहीं हो, यहाँ थाना है थाना!

विनोद ने मुस्कराकर कहा—जी, मैं थाने पर ही आत्म-समर्पण करने आया हूँ। आप दारोगा हैं?

दारोगा विनोद को सिर से पैर तक घूरता हुआ बोला—

तुम भी विचित्र आदमी हो। तुम्हारा सिर तो नहीं फिर गया।

विनोद ने कहा, सिर तो जरूर फिर गया है। मेरा नाम विनोद सिंह है। आपके पास मेरी खोज करने की सूचना आई ही होगी। मैं······जेल से भागा था। मुझ पर खून करने का मुकदमा चल रहा था। आप मुझे अपनी हिरासत में लेते हैं या मैं सदर·········।

दो तीन कानस्टेबिल थाने के भीतर से निकल आये। वे चौका-चूल्हा की व्यवस्था में थे! झगरू ने आगे बढ़कर कहा—ठीक है। हुजूर, आप इसे······।

दारोगा मानों नींद से चौंक उठा। उसे विनोद के फरार होने की सूचना मिली थी और पाँच हजार के इनाम की घोषणा का भी पता उसे था। वह समझ नहीं सका कि इतना भयानक फरार आप से आप आकर थाने के सामने खड़ा हो जायगा। जिसने पचासों सशस्त्र सिपाहियों के घेरे को तोड़कर गोलियाँ चलाता हुआ भाग जाने का पराक्रम किया था। सारी कहानी जब दारोगा के दिमाग में स्पष्ट हो गई तो उसने वीर-दर्प से ललकार कर भयभीत सिपाहियों को हुक्म दिया--गिरफ़्तार कर लो।

विनोद पकड़ लिया गया! विनोद ने दारोगा से कहा--आप कब मेरा चालान करेंगे।

झगरूसिंह ने विनोद को धक्का देकर कहा—अबे, चिल्ला क्या रहा है। चल हवालात में।

विनोद ने मुस्कराकर कहा—दारोगा साहब, जब मैंने खुद आत्म-समर्पण किया है तो धक्के मारकर मेरा अपमान किया जाय, यह कहाँ की मनुष्यता है।

दारोगा ने गुर्राकर कहा—चुप रह साले, बोला कि खाल खिंचवा लूँगा।

विनोद क्रोध से तिलमिला उठा, पर अब वह अपनी बाजी हार चुका था। एक बार उसके जी में आया कि वह उछल कर फिर चलता बने, किन्तु उसका हृदय निराशा और विरक्ति से भर गया था। वह अपने प्रति इतना झुँझला उठा था कि यदि उसके पास कोई अस्त्र होता तो वह थाने पर आने के पहले ही अपने को समाप्त कर देता। थाने की गंदी और अन्धकारपूर्ण हवालात में वह पहुँचा दिया गया--जहाँ न तो कोई बिछावन था और न प्रकाश का प्रबन्ध ! संध्या हो जाने के कारण उस कोठरी में अन्धकार का साम्राज्य स्थापित हो चुका था।

विनोद ने देखा कि दो अभागे वहाँ पहिले ही बैठे झखमार रहे थे। हवालात में ताला बन्द करके झगरू दारोगा के निकट गया और बोला--यह कौन है हुजूर !

दारोगा पुरस्कारवाली बात सिपाहियों से छिपाना चाहता था, वह बोला--डकैत है, डकैत ! देखते नहीं—अभी छोकरा है, पर देखने में भूत की तरह लगता है। साला जेल के सींखचे तोड़कर और दीवाल लाँघकर साल भर पहले भागा था—पता नहीं, यह खुद क्यों मरने आ गया !

झगरू ने कहा—साले की किस्मत फूटी है। क्यों हुजूर, इसका क्या होगा।

दारोगा ने कुढ़कर कहा—होगा क्या, साले को सदर तक पहुँचाना पड़ेगा। इससे कोई लाभ भी तो नहीं है। फटी कमीज और पैंट के अतिरिक्त इसके पास है क्या ?

झगरू ने कहा—जमा तलासी लेने पर एक एक सूई भी नहीं निकली—लोहे जैसा शरीर है। हुजूर, किसी बड़े घर का लड़का जान पड़ता है। कुसङ्ग में पड़कर पाप में फँसा। ख़ैर,

हमसे इन बातों से क्या मतलब—भेजिये सदर। यह एक झंझट है।

दारोगा ने कहा—जरा सावधान रहना, खतरनाक आदमी है।

पूरी ऊँचाई में तनकर झगरू ने कहा—हुजूर! इधर-उधर करेगा तो गला घोंटकर जंगल में फेंक दूगा।

दारोगा ने कहा—अरे, ऐसा न करना। यह सोने की चिड़िया है—इसे चेथरू गोंड मत समझना।

चेथरू गोंड एक 'तथा कथित' चोर था जिसे पीटते-पीटते······अधिक लिखना शायद उचित नहीं अतएव चुप लगा जाना ही समझदारी है।

झगरू नरम पड़ गया और इधर-उधर देखकर कहा—सो कैसे हुजूर! यह सोने की चिड़िया कैसे है।

दारोगा के मुँह से अचानक यह बात निकल गई थी। वह इधर-उधर करके बोला—देखते नहीं, किसी बड़े आदमी का लड़का है। सदर जाकर पता लगाने से ही काम चल जायगा।

चालाक झगरू को तोष नहीं हुआ। रात भी अधिक हो गई थी। विनोद हवालात में पहुँचकर उन दोनों अभागों के निकट बैठ गया। उनमें से एक बोला—तुम कौन हो जी?

विनोद ने कहा—तुम्हारा साथी!

वह व्यक्ति रुआसा-सा होकर कहने लगा—मैं तो एक गरीब किसान हूँ भैया, ये हत्यारे घर से पकड़कर ले आये—मेरी स्त्री मरणासन्न है, खाटपर तीन महीने से पड़ी है, तीन तीन बच्चे हैं। मैंने बहुत विनय की पर······बच्चे भी मर गये होंगे और स्त्री तो उसी दिन·····हे भगवान!

विनोद ने कहा—अपराध?

वह नवयुवक किसान कहने लगा—अपराध? कुछ भी

नहीं—पुलिसवाले कहते हैं कि मैंने डाका डाला है। खैर, छूटने पर इन्हें दिखलाऊँगा कि डकैत कैसे होते हैं। आज तक खून पानी करके ही पेट चलाता रहा पर पुलिस ने मुझे बल-पूर्वक डकैत बना दिया तो अब डकैत बन कर ही जीना उचित है!

विनोद ने कहा—यह प्रतिक्रिया बुरी है। और बुराई करने का हठ मत करो।

---

(३२)

वीणा के कमरे में घबराये-से घुसते हुए चौधरी बोले—मिस वीणा, तुमने कुछ सुना है। वीणा बैठी एक घोर रसदार उपन्यास पढ़ रही थी और रसोद्वेग में पगली बनकर झूम रही थी। रह रहकर उसके कपोल लाल हो उठते थे। क्योंकि प्रधान नायिका की जगह पर अपने को रख कर वह मानसिक आनंद लूट रही थी। जिस समय चौधरी अपनी घृणित उपस्थिति से कमरे के समस्त श्री-सौभाग्य का मटियामेट करने आये उस समय वीणा के उपन्यास का पात्र रात को कबन्द लगाकर अपनी प्रेमिका के घर में घुस रहा था और उसकी प्रेमिका आलिंगन करने की तैयारी कर रही थी, अपने आने वाले रस-राज प्रेमी का! ठीक इसी समय सिगरेट की बदबू लिये मि० चौधरी वृद्ध भालू की तरह कमरे में घुसे। वीणा, जो अपने ख्याल में आत्मविभोर थी और उपन्यास के प्रेमी-पात्र को अपने सामने प्रत्यक्ष रूप में देख रही थी, हठात् चौधरी को देखकर बेतरह घिना उठी और मन ही मन कुढ़कर किताब बन्द करती हुई उनकी ओर जलती आँखों से देखने लगी। इधर मि० चौधरी वीणा के निकट जब आते थे कोई न कोई

ऐसी बात बोलते आते थे जिससे यह बोध होता था कि वे अपनी इच्छा की लात खाकर यहाँ नहीं आये हैं बल्कि अत्यंत आवश्यकता की प्रेरणा से ही उन्हें आने का कष्ट उठाना पड़ा है।

चौधरी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—क्यों मिस वीणा, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न ?

वीणा का क्रोध भीतर ही भीतर उमड़-घुमड़ रहा था। उसकी कल्पना का सारा सुख चौधरी के आने मात्र से नष्ट-भ्रष्ट होगया जिसका उसे अत्यन्त दुःख था। वह अपनी झुँझलाहट को दबाकर बोली—सब ठीक है। आप क्या कहना चाहते हैं—कहिये।

इस 'आप' शब्द ने चौधरी पर प्रहार किया कि वे मन ही मन चीत्कार कर उठे। इस 'आप' के धक्के को वे सँभाल नहीं सके, क्यों कि यह उनकी आशा और इच्छा के प्रतिकूल वीणा से उन्हें दूर फेंकने वाला "सर्वनाम" था। मन ही मन विकल होकर चौधरी बोले—तुम नाराज तो नहीं हो ? शायद मैं असमय आगया—क्षमा करो ! फिर आऊँगा।

इतना कहकर जब चौधरी बेमन से उठने लगे तो उनको करुणायुक्त देखकर वीणा के हृदय में तनिक-सा दया का संचार होगया। वह बोली—आप बहुत भावुक हैं चाचा ! बैठिये।

यह दुहरा प्रहार था 'आप' और "चाचा" चौधरी अर्ध मूर्छित-सा कुर्सी पर बैठ गये। उनकी उँगलियों में दबी हुई अधजली सिगरेट जलती हुई उँगलियों के एक दम निकट तक पहुँच गई जिसकी ओर उनका ध्यान न था। वीणा बोली! —आप क्या कहना चाहते हैं ?

कुछ नहीं—इधर उधर देखकर चौधरी कहने लगे—तुम तो आजकल 'सर्वहारा' सम्प्रदाय की होगई हो !

वीणा स्थिरदृष्टि से चौधरी की ओर देखती हुई बोली—यह आपसे किसने कहा ? मैं सर्वहारा कैसे बन सकती हूँ ? आप जानते हैं, मैं पूँजीपति की कन्या हूँ और मेरे पिता आज भी ठेकेदारी की डोर पकड़ कर लक्ष्मी की ओर खिसकते जा रहे हैं।

चौधरी ने मुँह फाड़कर कहा—तुम्हें मालूम नहीं है, मैं जानता हूँ, क्योंकि मेरा एक निकटतम बन्धु सी० आई० डी०.........।

वीणा पहले तो सहम गई पर फिर बोली—चाचा, ईश्वर से डरा करो। यह कर्म अच्छा नहीं है। आप प्रायः बिना पानी के मोजे उतारा करते हैं।

चौधरी क्रुद्ध हो गये और दोनों हाथ पसार कर बोले—ये जो छोकरे तुम्हारे कमरे में हर घड़ी धमा-चौकड़ी मचाया करते हैं ? मैं सी० आई० डी० का नौकर नहीं हूँ पर तुम्हें मालूम होना चाहिये कि पाप चिल्ला चिल्लाकर.......।

वीणा मेज पर हाथ पटककर बोली—यह सब गन्दा षड्-यन्त्र है। मैं सब समझती हूँ। आप को भी पहचानती हूँ। और आप के सी० आई० डी० को भी। मैं आज ही पिताजी को तार देकर बुलवाती हूँ। अब चुप रहने से काम नहीं चलेगा।

चौधरी डर कर हाँफने लगे। यह सर्वहारा की कहानी उनके सड़ियल दिमाग की गढ़ी हुई थी। वे वीणा पर अपनी धाक का सिक्का जमाना चाहते थे। चौधरी को चुप देखकर वीणा ने कहा—मुझे तो ऐसा लगता है कि आपने ही सी० आई० डी० का भार उठाया है। मैं इस कोठी में अपनी माँ और विद्यार्थी भाइयों के साथ अकेली ही रहती हूँ। पिताजी ने आपको मेरा अभिभावक नियुक्त किया है। जब स्वयम्

डालियाँ फल खाने लगेंगी तो भगवान् फलों की रक्षा क्या खाक करेगा।

चौधरी चिल्ला कर बोले—यह गंदा लांछन है वीणा। मैं भद्र पुरुष हूँ।

वीणा चाय के पानी की तरह कटली के भीतर ही भीतर उबल सी रही थी। वह भी तेज स्वर में बोली—मैं ठठेरे के घर की बिल्ली हूँ—ढोल पीटकर मुझे भगाया नहीं जा सकता।

चौधरी अवाक् हो गये। उन्होंने वीणा में ऐसी तेजी कभी नहीं देखी थी। वे इतना घबराये कि उठकर खड़े होगये और बोले—समझ गया, अब तुम चुप रहो। एक अभिभावक के नाते ही मैंने सब कुछ सहा नहीं तो·········

वीणा सीधे तनकर कुर्सी पर बैठ गई और काँपते हुए स्वर में बोली—नहीं तो क्या ? आप मुझे पीटते—? इतनी हिम्मत !

चौधरी पसीने-पसीने होकर धम्म से कुर्सी पर फिर बैठ गये और वाष्प रुद्ध कंठ से अपना वक्तव्य देने लगे—हाय दुर्भाग्य! वीणा, तुम नहीं जानती मेरे हृदय में तुम्हारे लिये कितना स्नेहपूर्ण स्थान है। मैं तुम्हारे सम्बन्ध में अन्यथा सोच भी नहीं सकता। तुम जानती हो, जिससे एकात्म्य स्थापित हो जाता है उसी के प्रति मोह उत्पन्न होता है—जहाँ भिन्नता रहती है, दुराव रहता है वहाँ उदासीनता होती है। मैं तुम्हारे सम्बन्ध में रात-दिन चिन्ताकुल रहता हूँ। ये हिन्दुस्तानी आवारे तुम्हें काफी बदनाम कर रहे हैं। बाहर कान नहीं दिया जाता।

चौधरी का वह प्रहार काम कर गया। वह बदनामी का नाम सुनकर सिहर उठी। मन्त्र बल से साँप का उठा हुआ फन जैसे सहसा झुक जाता है वीणा का फन भी झुक गया। वह सिर झुकाकर बैठ गई। अनुभवी चौधरी ने फिर संभल-

कर दूसरा प्रहार किया—हम बंगाली हैं। हम सांस्कृतिक दृष्टि से इन कुलियों से उच्च हैं। एक हिन्दुस्तानी चाहे वह कितना बड़ा भी क्यों न हो, किसी भी पतित से भी पतित बंगाली से उच्च नहीं है। यह बात तुम गाँठ बाँधकर मन में रख लो वीणा।

वीणा सहज स्वर में बोली—यह तो पल्ले दर्जे की संकीर्णता है। हम आज बंगाल में नहीं हैं। न जाने कब से हिन्दुस्तान की हवा में साँस ले रहे हैं और यहीं की कमाई खा रहे हैं।

चौधरी अच्छी तरह जमकर बैठ गये और बोले—बसने से क्या होता है। अँग्रेज सैकड़ों साल से भारत की कमाई पर गुलछर्रे उड़ा रहें हैं पर वे हिन्दुस्तानी नहीं बने। हम यदि दूसरों से घृणा नहीं करेंगे, आत्मोन्नति कर ही नहीं सकते।

वीणा ने कहा—आपका यह तर्क बिल्कुल भ्रष्ट है। घृणा उन्नति की जननी नहीं है। खैर, हिस्दुस्तानियों के विषय में आपकी जो सम्मति है, उसका मैं किसी अंश तक आदर करती हूँ। सचमुच ये हिन्दुस्तानी विश्वास के योग्य नहीं हैं। मैं स्वयम् इनकी छाया मात्र से घिनाती हूँ।

वीणा के सामने मनोहर की मूर्ति स्पष्ट होगई। मनोहर ने वीणा को ठुकराया और अपना रास्ता अलग बना लिया। मनोहर की इस बेवफाई की प्रतिक्रिया वीणा पर व्यापक रूप में हुई। वह समस्त गैर-बंगालियों से चिढ़ सी गई और कुछ रुककर कहने लगी—आप क्या कहना चाहते हैं, कहिये।

चौधरी मन ही मन तृप्त होकर बोले—यही कि तुम हिन्दुस्तानियों का साथ छोड़ दो। बंगाली समाज तुम्हारे इस हिन्दुस्तानी प्रेम को ओछी नजरों से देखता है। कल मैं मि० महलानविस के यहाँ गया था·········।

कौन महलानविस ?—वीणा सोचती हुई बोली।

चौधरी ने कहा—तुम भूल गई ? मि० महलानविस हमारे एस० डी० ओ०! हाँ, तो उन्होंने तुम्हारे विषय में पूछा और कहा कि मिस वीणा को मैं सदा हिन्दुस्तानियों का साथ देते देखता हूँ। यह एक बंगाली कुमारी के लिये अपमान और कलंक है। तुम्हीं सोचो, यदि तुम्हारे पिता यह बात सुनेंगे तो उन्हें कितनी मर्मान्तक पीड़ा होगी। वे जन्म से ही यहाँ हैं पर उनका हृदय बंगाली है। वे अपने दफ्तर में एक भी हिन्दुस्तानी क्लर्क नहीं रखते और यदि वश चले तो अपनी ठेकेदारी में काम करने के लिये कुली भी बंगाल से ही मँगवाते। उन्हें इस बात की प्रसन्नता है कि बंगाली कुली नहीं मिलते—वह देश कुलियों का नहीं है, कुलियों पर शासन करने वालों का है। वे ठेकेदारी के सारे सामान बंगाली कम्पनियों से खरीदते हैं और बंगाली बैंक में ही अपने रुपये रखते हैं—अब समझी!

वीणा ने कहा—समझ गई। मुझे दुःख है कि·····मैंने भूल की है।

उत्साहित होकर चौधरी उठकर वीणा की बगल में सोफा पर बैठ गये और अपने नये लगाये हुए दाँत खिसोड़कर बोले—तुम नहीं जानती वीणा, हम बंगाली उच्च-संस्कृत हैं। ये हिन्दुस्तानी—छिः! शरत् बाबू ने अपने उपन्यास में लिखा है कि ये बंगाली मुर्दे को छूते तक नहीं—तुमने पढ़ा ही होगा। मुर्दे की भी कहीं जाति होती है—मुर्दा तो मुर्दा मात्र है।

वीणा ने सिर झुका कर अपनी गहरी सहमति जनाई और कहा कि—मैं भविष्य में हिन्दुस्तानियों से दूर ही रहूँगी—मुझे उनसे घृणा है।

अचानक वीणा के गले में हाथ डालकर चौधरी स्नेह-सिक्त कंठ से बोले—अब समझी पगली ! अब समझी······!

वीणा ने कोई विरोध नहीं किया, वह बोली—अब आप जा सकते हैं। मैं सोचना चाहती हूँ।

इतना कहकर वह धीरे से उठ खड़ी हुई और जब बगल के कमरे में जाने लगी तो चौधरी दूर से बोले—नाराज हो गई मिस वीणा !

नहीं-नहीं—मैं नाराज नहीं हूँ—वीणा जरा-सा रुक कर बोली और कमरे में चली गई।

चौधरी उस कमरे के दरवाजे पर खड़े होकर हाँफते हुए बोले—मैं संध्या समय आऊँगा। यहीं रहना—आवश्यक काम है।

वीणा ने उत्तर दिया—संध्या समय मैं नहीं रहूँगी, आप अब कष्ट मत करें।

क्रुद्ध चौधरी बड़बड़ाये—अभागी····· अच्छा, तुझे भी गदाधर के साथ नहीं भेजा तो मेरा नाम चौधरी नहीं।

महीना समाप्त होते न होते वीणा के चारों ओर सी० आई० डी० के भूत मँडराने लगे जिसका पता वीणा को न था। वह अभागी अपने चारों ओर के जाल को जाल को नहीं देख सकी !!!

---

(३२)

संध्या हो चुकी थी। वृक्षों की लम्बी-लम्बी छाया पूरब की ओर फैलने लग गई थी। बसेरा लेनेवाले पक्षियों का दल वृक्षों पर कोलाहल करने लग गया। दारोगा ने विनोद को अपने सामने बुलाकर पूछा—क्यों जी, आज तुम्हारा चालान कर रहा हूँ। अपना बयान दो।

विनोद ने कहा, जो कुछ कहना होगा जज के सामने कहूँगा, आप मेरा चालान भर कर दें।

झगरूसिंह, जो विनोद के पहरे में खड़ा था, दहाड़ कर बोला—यह ऐसे नहीं मानेगा हुजूर······पहले इसे ठीक करने का हुक्म दीजिये।

दारोगा ने कुछ सोचकर कहा—ठीक करके क्या करोगे? यह तो एकदम बन्धु-बान्धवहीन व्यक्ति जान पड़ता है। दो दिनों के बीच में इसकी ओर से कोई नहीं आया—मैं तो इसे छोड़ देना चाहता था किन्तु······।

झगरू ने कहा—आप कर क्या रहे हैं। यह एक खतरनाक कैदी है······बाप रे बाप!

दारोगा जानता था कि नकद ५०००) पुरस्कार विनोद के लिये है, पर झगरूसिंह को तोष देने के लिए वह इतनी उदासी प्रकट करके बोले—ठीक है। अच्छा इसका चालान करता हूँ। तुम तीन कानस्टेबल साथ जाना—!

आवश्यक कागज पत्र लिखकर दारोगा ने विनोद को स्टेशन की ओर भेजा—पाँच मील की दूरी पर स्टेशन था और रास्ता था बिल्कुल जंगली। विनोद जब चला तो उसके कानों में लाली की आवाज गूँजने लगी। जंगल में बोलनेवाले झिंगुरों की झनकार उसे लाली की पुकार की तरह जान पड़ती थी। चलते-चलते वह चौंक उठता था, रुक जाता था और फिर आगे बढ़ता था। विनोद को कभी-कभी यह भ्रम हो जाता था कि किसी अन्धकारपूर्ण झाड़ी से बाहर निकलकर लाली दौड़ी आ रही है और कह रही है—अब मैं तो नहीं रूठूँगी। ज्यों-ज्यों विनोद आगे बढ़ता गया, गहन वन के बीच से जाने वाली सड़क पर जाते हुए उसे बराबर लाली की पुकार सुन पड़ती रही—वह अपने कान बन्द करना चाहता था, पर

हाथों की हथकड़ियाँ बाधक थीं। धीरे-धीरे उसका चित्त विकल हो उठा। वह चाहता था कि पुमार उसका पीछा न करे पर यह उसके बश की बात न थी। एक स्थान पर तो वह अचानक रुक गया और बगल की झाड़ी की ओर देख कर बोला—लाली ?

झगरूसिंह चिल्ला उठा—अबे, चल ! लाली, पीली, हरी की याद मत कर ! विनोद का ध्यान भङ्ग हो गया। वह दीर्घ श्वास त्याग कर आगे बढ़ा। तीनों सिपाही तेज कदम बढ़ाये आगे बढ़ रहे थे और विनोद भी उनका साथ दे रहा था। बड़ी बड़ी शानदार मूछोंवाला जमादार कभी कभी अपने भद्दे गले से एकाध गजल चिल्ला उठता था तो झगरू उसे यह कह कर रोक देता था कि—आवाज सुन कर शेर चीते आ जायँगे।

सामने स्टेशन का ऊँचा सिगनल नजर आया और फिर हवा में मिली हुई पत्थर कोयले की गन्ध आई। गाड़ी आने में देर थी। यह दल सीधे प्लेटफार्म पर गया। अचानक विनोद की दृष्टि वीणा पर पड़ी—वह मन ही मन कुछ लज्जित-सा हो कर पीठ फेर कर खड़ा हो गया। वीणा चञ्चल कदमों से प्लेटफार्म पर टहल रही थी। बाल बिखरे हुए थे' और चेहरा बेहद उतरा हुआ था। दो तीन चक्कर मार कर वह उत्सुकता-वश रुकी और चश्मे के भीतर से विनोद की ओर देखने लगी। विनोद को आश्चर्य हुआ कि वह इस जंगली स्टेशन पर क्यों आई। अचानक वीणा मुड़ी और विनोद के सामने आकर खड़ी हो गई। कुछ क्षण वह घबराई-सी देखती रही और हाँफती रही। रसिक जमादार अपनी मूछें उमेठता हुआ वीणा को घूरने लगा। विनोद भी चुपचाप सिर झुकाये खड़ा रहा। वीणा बोली—आप ? विनोद बाबू—! यहाँ—!

विनोद ने कहा—आश्चर्य, आप यहाँ अकेली क्या कर रही हैं ?

वीणा ने पूछा—अखबारों में पढ़ा था आप जेल से फरार हो गये थे—फिर इस फन्दे में कैसे फँसे।

विनोद ने कहा—न जाने यह सब कैसे हो गया। आप यहाँ क्यों आईं ?

वीणा ने कोई उत्तर नहीं दिया !

बात यह थी कि वीणा किसी विशेष उद्देश्य से अपने पिता से मुलाकात करने आई थी जो इसी इलाके में—जंगल में—ठेकेदारी कर रहे थे। चौधरी कांड के बाद से वह जिस आपदा में फँसी थी, उसका पता उसे चल गया था और उसके पिता को पत्र लिख कर चौधरी ने वीणा की शिकायत की थी। बात यहाँ तक बढ़ी कि पिता और पुत्री में झगड़ा हो गया। डा० मजूमदार ने वीणा को लिख भेजा कि वे अब घर नहीं लौटेंगे; क्योंकि उनका हृदय बहुत ही व्यथित हुआ है। वीणा अपने पिता की वस्तुस्थिति का ज्ञान करने गई थी। दोनों में समझौता हो गया। तुरन्त वीणा का अर्दली भी टिकट लेकर आ गया और ट्रेन आने का सिगनल हुआ तो वीणा बोली—मैं भी इसी ट्रेन से जा रही हूँ। चलिये, रास्ते में बातें होंगी।

जमादार मन ही मन प्रसन्न होकर बोला—हाँ, हाँ रास्ते में जी भर कर बातें कीजियेगा यहाँ इससे बातें करना उचित नहीं है - ऐसा कानून भी नहीं है। वीणा ने जमादार की ओर ध्यान नहीं दिया, यद्यपि वह अपनी उमेठी हुई मूछों की ओर वीणा का ध्यान आकर्षित करने का भरपूर प्रयत्न कर रहा था। गाड़ी आई और वीणा विनोद की ओर भ्रूक्षेप किये बड़े नाज से फर्स्ट क्लास में घुसी। विनोद एक भरे हुए थर्ड क्लास के डब्बे में बैठाया गया। डब्बा भरा हुआ था और मुसाफिर एक

दूसरे पर लदे हुए थे। थोड़ी देर बाद जब गाड़ी खुली तो विनोद ने एक बार जंगल की ओर देखा। घटायें उमड़ रही थीं और बूँदाबूँदी आरम्भ हो गई थी। विनोद के हृदय में एक टीस पैदा हुई और कानों में—'अब नहीं रूठूँगी'—की करुण पुकार फिर गूँज उठी। वह विकल हो उठा। गाड़ी जंगल के बीच में दौड़ने लगी और विनोद बार बार—अब नहीं रूठूँगी—की पुकार सुनने लगा। जिस बेंच पर सिपाहियों से घिरा हुआ वह बैठा उसके सामने ही एक सुन्दरी किन्तु चञ्चल स्त्री बैठी थी। जमादार जान बूझ कर उस स्त्री के सामने बैठा। गाड़ी खुलते ही जमादार ने गाना शुरू किया और रह रह कर अपनी मूछें उमेठता हुआ वह खाँसने भी लगा। वह चाहता था कि सामने बैठी हुई स्त्री एक क्षण भी इधर उधर न देखे—लगातार उसी जंगली भैंसे को देखा करे। उस स्त्री का ध्यान इधर उधर जाता तो जमादार भीम वेग से गा उठता और बीच बीच में जोर से खाँसने भी लगता। वह स्त्री तंग-तंग आ गई पर कोई उपाय न था। दौड़ती हुई गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी और फिर आगे बढ़ गई। जंगली छोटा स्टेशन प्रायः निर्जन ही था—छोटी-सी लालटेन खम्भे पर टिमटिमा रही थी। गाड़ी फिर हाहाकार करती हुई आगे बढ़ी और घनघोर जंगल के बीच से हो कर दौड़ने लगी।

विनोद ने देखा—लाली गाड़ी के साथ पुकारती हुई दौड़ रही है—अब नहीं रूठूँगी, अब नहीं रूठूँगी, अब नहीं रूठूँगी।

विनोद व्यग्र होकर इधर उधर देखने लगा, इधर जमादार ने एक बार खाँस कर एक रस भरा हुआ गीत पूरी ताकत लगाकर गाने लगा क्योंकि उसके सामने जो रूपवती स्त्री बैठी थी वह ऊँघने लगी थी। गाड़ी के आधे से अधिक व्यक्ति नींद

के मारे झूम रहे थे। कुछ एक दूसरे के कन्धे पर सिर रख कर सो भी गये थे।

विनोद बोला—जमादार साहब!

जमादार अपने गाने में इस व्याघात को सहन नहीं कर सका। वह कुढ़कर बोला—"क्या है जी?"

मैं पाखाना जाऊँगा—विनोद व्यग्र-सा मुंह बनाकर बोला।

जमादार ने कहा—यह नहीं हो सकता, बैठो चुपचाप।

वह स्त्री सचेत होकर अपने ऊँघते हुए साथी से बोली—सो गये क्या? इतने बड़े बड़े तीन तीन सिपाही इस छोकरे से डरते हैं, इसे पाखाने की इजाजत भ नहीं देते?

जमादार ताव में आकर चिल्ला उठा—क्या कहा आपने? ऐं, मैं डरता हूँ इस भुनगे से! चाहूँ तो इसका गला घोंटकर गड़ी के नीचे फेंक दूँ।

वह स्त्री व्यङ्ग से मुस्करा कर अपने साथी को ही लक्ष्य करके बोली—यह छोकरा कोई चिड़िया है जो उड़ जायगा। बेचारे को कितना कष्ट हो रहा होगा - राम राम!

जमादार ने ताव में आकर कहा—झगरूसिंह, इसकी हथकड़ियाँ खोल दो और साले को पाखाने में पहुँचा कर दरवाजे पर खड़े रहो। हुँ, भाग जायँगे—गोली मार दूँ अगर भागने का नाम भी ले। मैं······मै सरकारी आदमी हूँ।

इतना बोलकर जमादार ने कसकर बन्दूक की नली पकड़ी और दूसरे हाथ से मूँछों को उमेठता तथा अपनी शरारत भरी पीली तथा गोल गोल आँखों से उस सुन्दरी को घूरना आरम्भ कर दिया।

स्त्री ने जमादार की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर कहा—आप ठीक ही कह रहे हैं। देखते नहीं—आपका कैदी कितना

व्याकुल हो रहा है। सरकार के हुक्म में किसी का प्राकृतिक-उद्वेग नहीं है।

जो जाग रहे थे उन्होंने उस स्त्री का समर्थन किया। ऊपर की बेंच पर जो छैला मूँछ कटाये और हाफपैंट पहने बैठे थे और लगातार सिगरेट पीते हुए उस सुन्दरी को देख रहे थे, आकाशवाणी की तरह बोले—इनका कहना ठीक है। पाखाना-पेशाब कानून से बाहर है। आप इस कैदी को रोकिये मत!

जमादार गुर्रा कर बोला—तुम कौन हो जी जो सिर पर बैठ कर अपनी राय दे रहे हो।

वह ऊपर से ही झाँक कर बोला—मैं भी एक यात्री हूँ हुजूर! उचित बात पर बोलने का प्रत्येक को हक है। आप दया करके इसे पाखाने जाने दीजिये।

उस सुन्दरी ने फिर मटक कर अपने साथी से कहा—यह छोकरा भी कैसा खतरनाक है, जिससे बन्दूकें लिये हुए इतने बड़े बड़े जवान डर रहे हैं।

जमादार ताव में आ गया और बन्दूक को जरा सा पटक-कर बोला—मैं डरता हूँ? आप बोल क्या रही हैं—मैं काल से भी नहीं डरता। यह किस खेत की मूली है। झगरू. साले को पाखाने में बन्द कर दो—वहीं रहे। पहरे पर तुम रहना।

झगरू ऊँघ रहा था। वह चौंका और इधर उधर देखने लगा। जमादार ने अफसर की तरह हुक्म दिया—मैंने कहा, इसे पाखाने में बन्द कर दो, पहरे पर तुम रहो। खिड़की से कूदकर साला मरा तो इसकी जान जायगी।

झगरू ने पाखाने के दरवाजे पर पहुँचा कर विनोद की हथकड़ियाँ खोल दी और कमर की रस्सी को भी खोल दिया। विनोद जब पाखाने में घुसा तो झगरू असंस्कृत भाषा में

बोला—अबे, जल्दी आना। मैं तेरे बाप का नौकर नहीं हूँ जो खड़ा रहूँगा।

विनोद ने पाखाने में घुसकर भीतर से दरवाजा बन्दकर लिया और अच्छी तरह सिटकिनी चढ़ा दी। उसने एक बार चारों ओर उस छोटी-सी आलमारी जैसी कोठरी को देखा। लोहे जैसी काठ की दिवारें और छत। वह निराश हुआ। उसने खिड़की को हिलाया वह भी अपनी जगह पर दुर्भाग्य की तरह, अडिग, स्थिर! उसने एक बार अँगड़ाई ली और फिर खिड़की को हिलाना आरम्भ कर दिया। गाड़ी तेजी से जा रही थी और जमादार के भैरव गान की आवाज दरवाजे के रन्ध्रों से होकर पाखाने में भी गूँज रही थी। विनोद मुस्कराया और खिड़की तोड़ने का प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी कमीज उतारी और हाथ में लपेटकर शीशे पर एक हल्का-सा घूँसा मारा इसी समय झगरू ने आवाज दी—अबे जल्दी कर!

विनोद का हृदय धड़क उठा उसने खाँसकर अपनी हस्ती का, उपस्थिति का सुप्रमाण झगरू को दे दिया। वह निश्चिन्त होकर निकट की बेंच के किनारे पर बैठ गया। विनोद शीशे को तोड़ने का प्रयत्न करने लगा। इस बार उसे सफलता का एक छोटा-सादर उत्साहवर्धक अंश प्राप्त हुआ। गाड़ी पुरानी थी और शीशा कई जगहों से ढीला पड़ गया था। एक हल्की झनझनाहट के साथ वह फूट गया। विनोद ने सावधानी से शीशा तोड़-तोड़कर पूरी खिड़की को साफ कर दिया। ठंढी हवा के झोंके भीतर आने लगे। गाड़ी का भैरव घोष भी भीतर आया।

झगरू ने हाँक लगाई—अबे जल्दी कर!

जमादार ने चिल्लाकर कहा—मरने दो वहीं साले को—वह जायगा कहाँ।

विनोद ने दरवाजा थपथपाकर और खाँसकर अपनी स्थिति का प्रमाण दिया। आकाश घटाओं से भरा था और बड़े जोरों से वर्षा भी हो रही थी। गाड़ी की सभी खिड़कियाँ बन्द थीं। यात्री सो रहे थे या ऊँघ रहे थे। जमादार एकाग्र चित्र से उस स्त्री को घूर रहा था और बीच-बीच में उसे बोलने के लिये भी वाध्य करता था। जमादार ने पूछा— आप कहाँ जायँगी!

उस स्त्री ने मुस्करा कर कहा—कानपुर!

जमादार ने कहा—वहाँ कुछ काम है।

स्त्री के साथी ने कहा—आप तवायफ हैं, नाचना गाना ही आपका काम है।

स्त्री ने मुस्कराकर जमादार की ओर देखा—वह बाग बाग होगया। तवायफ का नाम सुनते ही जमादार की शरारत बढ़ी, साहस बढ़ा और जो थोड़ी सी मनुष्यता थी, वह एक दम हिरन होगई। वह जोर से ठहाका मार कर बोला—क्या खूब! कानपुर जाकर क्या करोगे, उतर पड़ो यहीं, जहाँ हम उतरेंगे। हमारे थाने पर एक जल्सा हो जाय, फिर जहाँ जी चाहे, जाना!

वह तवायफ बोली—मंजूर है, मगर लौटती बार आऊँगी। अभी तो माँ की बीमारी का तार पाकर जा रही हूँ।

जमादार ने कहा—हूँ, तुम जैसियों के वादे पर एतबार करना उल्लू का काम है। रोज वादे किये जाते हैं और तोड़े जाते हैं।

झगरू बैठा बैठा ऊब उठा तो बोला—अबे, निकलता है या वहीं आकर लगाऊँ दो लात!

तवायफ ने कहा - राम, राम यह जुर्म! अभी दस मिनट भी बेचारे को गये नहीं हुए कि पाँच-पाँच बार पुकार हो चुकी।

जमादार ने चिल्लाकर कहा—झगरूसिंह, क्यों चिल्लाते

हो, रहने दो वहीं साले को—कोई चूहा, छछूँदर है जो पाखाने के नाबदान से भाग जायगा। इतना बोलकर जमादार ने बीर दर्प से बाई जी की ओर देखा और जेब से निकालकर सिगरेट का पैकेट उसकी ओर बढ़ाते हुए काले और मोटे होठों में में रसभर कर मुस्करा दिया।

विनोद ने अपने हृदय की उमड़ती हुई भावनाओं के आघात प्रतिघातों से विकल होकर एक बार बन्द सिटकिनी को फिर से कस दिया और जोर से खाँसकर पहरे पर खड़ा झगरूसिंह को तोस दे दिया। वह खिड़की की ओर मुड़ा और हाथ में लिपटी हुई कमीज को पहन कर बाहर अन्धकार की ओर झाँकने लगा - एक झपट्टे में छोटी सी गुमटी पीछे चली गई और गुमटी के जमादार की हरी रोशनी भी गायब होगई। अन्धकार को फाड़ती हुई गाड़ी राक्षसी की तरह दौड़ती जारही थी और वर्षा भी हाहाकार करती हुई बरस रही थी। विनोद ने आँखें सिकोड़ कर नीचे भूमि की ओर देखा। उसके कानों में अचानक लाली की पुकार—मैं नहीं रूठूँगी—गूँज गई। उसके मानस नेत्रों के सामने लाली की अल्हड़ मूर्ति भी स्पष्ट होगई। साँवला रङ्ग, कजरारी आँखें, भरा हुआ शरीर और गदराया हुआ यौवन का वसन्त। स्वभाव में भोलापन और अल्हड़पन का सम्मिश्रण। भरी-भरी कलाइयों में चांदी के मटे मोटे दो कड़े और अंग अंग से रस विह्वलता की शत् शत धारायें फूट रही हैं। उसके सामने मानों उनींदी सी, अँगड़ाई लेकर लाली खड़ी होगई और बोली—अब नहीं रूठूँगी। विनोद ने कहा—चलो, हम क्षितिज के उसपार चलकर एक घोंसला बनावें—इस नरकालय से छुटकारा लेलें। विनोद चौंका और दोनों हाथों से एक बार अपना ललाट दबाकर फिर खुली खिड़की से झाँकने लगा। गाड़ी का वेग कुछ कम

हुआ—सामने सिगनल थी। विनोद ने समझा कि अब गाड़ी खड़ी होगी। वह अपने सारे शरीर के भार को संभाल कर खिड़की से बाहर की ओर उछल पड़ा। वह विद्यार्थी जीवन में एक नामी खेलाड़ी था—शारीरिक संतुलन रखने का उसे अभ्यास भी था। विनोद नीचे गिरा और सावधानी से लुड़कता हुआ जल भरे गढ्ढे में चला गया। बरसात के कारण मिट्टी पोली थी और काफी घास भी ऊगी हुई थी। उसे चोट नहीं लगी—वह पानी में जाकर खड़ा होगया। उसने देखा गाड़ी की चाल तेज हो गई। देखते देखते गार्ड के डब्बे के पीछे लगी हुई लाल रोशनी आँखों से ओझल हो गई। विनोद ने बरसती हुई अन्धेरी रात में अपने को घोर निर्जन बन में अकेला पाया। वह किसी-किसी तरह बाहर निकला और लाइन पर खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। कुछ सोचकर वह चौंका और चुपचाप जंगल में घुस गया झाड़ियों से उलझता हुआ।

---

(३४)

वही भग्न शिव मन्दिर और वही घोर वन !

बादलों के फाँक में से ऊषा ने झाँककर देखा। विनोद अपने गीले कपड़े निचोड़कर मन्दिर की टूटी-फूटी और काई लगी हुई सीड़ियों पर खड़ा हो गया। वह कुछ देर इधर-उधर देखकर मन्दिर के भीतर गया। उसका वह रूमाल जिसे लाली ने खेल खेल में फाड़ डाला था खूँटी में अब तक बँधा था। और मौलश्री की सूखी माला भी उसी खूँटी में लटकती हुई हवा में डोल रही थी। एक कोने में लाली का लाया हुआ मिट्टी का एक पुरवा पड़ा था जिसमें वह बकरियों का दूध दुह कर विनोद को पिलाया करती थी। एक सप्ताह पूर्व वह वहाँ से गया था।

सात आठ दिनों में वह फिर लौट आया। विविध सुखमयी लालसाओं के हिडोले पर झूलता हुआ विनोद मन्दिर के भीतर गया। वह बार-बाहर निकलता और आकाश की ओर देखकर समय का अनुमान करता। लाली प्राय: दोपहर के पहले आ जाती थी—दोपहर हो गई और सूर्यास्त भी बादलों की ओट में होने लगा पर लाली नहीं आई। विनोद का हृदय रह रहकर उछने लगा और उसकी आकुलता बढ़ने लगी। वह दो तीन बार जंगल के छोर तक भी गया। किन्तु लाली की छाया भी उसे नजर नहीं आई। उस दिन जिस स्थान पर लाली जामुन चुन रही थी वहाँ बहुत से सड़े हुए जामुन विखरे हुए थे—विनोद ने दो चार सड़े जामुनों को उठाकर देखा—उसकी आँखें छलछला उठीं! किसी किसी तरह रात बीती और एक-एक दिन करके पाँच दिन व्यतीत हो गये।

विनोद ने अपने भीतर भूचाल का सा अनुभव करना आरंभ कर दिया। वह पागलों की तरह कभी रोता, कभी सिर पीटता और कभी उठकर जंगल में घूमने लगता। पूर्व स्मृतियाँ उत्तरोत्तर क्षीण होती गईं। वह सोते, जागते हर घड़ी लाली की पुकार सुनता और कभी-कभी तो उसे ऐसा जान पड़ता कि लाली मन्दिर के दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई है। व्यग्र होकर विनोद पागलों की तरह दौड़ता और फिर मन्दिर में पछाड़ खाकर गिर पड़ता। इस स्थिति में जब सप्ताह समाप्त हो गया तो एक दिन विनोद ने लाली की सुपरिचित बकरियों को तालाब के किनारे चरते देखा। वह अचानक उछला और बकरियों के निकट पहुँचकर इधर-उधर देखने लगा। उसने देखा एक लड़का जो १० । १२ साल का होगा, दूर पर डरा-सा खड़ा है—उसके चेहरे का गठन लाली से मिलता था। विनोद छटपटाता हुआ उस लड़के के निकट पहुँचा और

हठात् उसके दोनों कन्धों पर अपने गरम तथा काँपते हुए हाथ रखकर बोला—तुम कौन हो जी—लाली को जानते हो? ये बकरियाँ तो उसी की हैं।

लड़का डर गया और उसकी आँखों में आँसू उमड़ गये। वह बोला—मैं लाली का भाई हूँ।

विनोद ने चिल्लाकर कहा—डरो मत, लाली कहाँ है, तुम मुझे बतला सकते हो।

पहले तो लड़का चकराया किन्तु फिर शान्त स्वर में बोला—मैं नहीं जानता, वह कहाँ गई, क्या हो गई।

विनोद उसके कन्धों को झकझोर कर बोला - बोलो-बोलो! तुम्हें बतलाना होगा।

लड़का घबराकर कहने लगा—मुझे छोड़ दो, मैं सब कुछ बतला दूँगा।

विनोद ने शान्त स्वर में कहा—तुम बड़े अच्छे लड़के हो—बतला दो भैया, लाली कहाँ गई, क्या हुई?

लड़का कहने लगा—आजके पन्द्रह सोलह दिन पहले वह जामुन चुनने आई थी।

विनोद विकल स्वर में चीख उठा—आगे की कहानी कहो-मैं जानता हूँ वह जामुन चुनने आई थी।

लड़के ने अपने भय से सूखे हुए होठों को जीभ से तर करता हुआ कहा—वह रात तक घर नहीं लौटी तो बाबा और गाँववाले लालटेन ले लेकर उसे खोजने चले। जंगल में लाली की आवाज गूँज रही थी—'लौट आओ, अब नहीं रूठूँगी।'

विनोद ने कराह कर कहा—हाय, इसके बाद!

लड़का धीरे-धीरे कहने लगा—उसकी आवाज तो हम सब सुन रहे थे पर यह किसी को पता नहीं चलता था कि वह कहाँ है। बड़ी खोज ढूँढ़ के बाद लाली एक झाड़ी के पास बैठी

मिली। वह पगली की तरह रो रही थी और रह रहकर चिल्ला रही थी—मैं नहीं रूठूँगी—मैं नहीं रूठूँगी।

बाबा उसे पकड़कर घर ले आये। खूब पीटा भी पर वह बराबर यही रटती रही। ओझा आये पर भूत नहीं उतरा। इस जंगल में भूतों का बड़ा जोर है। मेरी बहन को किसी भूत या चुड़ैल ने पकड़ लिया था।

विनोद अपनी रुलाई नहीं रोक सका। वह रोता हुआ बोला—बोलो भैया, फिर क्या हुआ। मैं ही वह भूत हूँ।

भयाकुल लड़के ने कहना आरम्भ किया—मेरी बहन को एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। रात को जब हम सो गये तो वह न जाने कैसे निकल भागी। सुबह जब बाबा को पता चला तो वे फिर जंगल में खोजने गये। मैं भी साथ-साथ गया। गाँव के दूसरे लोग भी थे। हम खोजते खोजते थक गये तो एक झाड़ी से उलझी हुई उसकी लाल रंग की साड़ी नजर आई।

उसने हाथ उठाकर दिखलाया। वह झाड़ी मन्दिर से थोड़ी ही दूर पर थी। इसके बाद लड़के ने कहा—हम जब झाड़ी की ओर चले तो भीतर से शेर के गुर्राने की आवाज आई। नीचे—जमीन पर, स्थान-स्थान पर खून जमा था क्योंकि उस रात को वर्षा नहीं हुई थी। प्रायः भूत शेर बनकर गाँवों में घुस जाते हैं। हम भागे और एक दिन के बाद झाड़ी में जाकर बहन की हड्डियाँ उठा लाये। बाबा उसके हाथ के चाँदी के कड़े खोजने दो तीन बार झाड़ी की ओर गये पर पता नहीं चला कि वे कड़े क्या हुए। वे कड़ों के लिए बहुत ही दुःखित हुए ……।

लड़का चुप लगा गया। विनोद बड़े जोर से चौंका और दौड़कर उस झाड़ी की ओर चला गया जिसके भीतर बैठकर

शेर ने लाली के यौवन से भरे मांस खाकर अपने को तृप्त किया था।

× × ×

प्राय: एक सप्ताह तक जंगल के निकटवाले गाँवों के निवासी रात को भयाकुल चित्त से यह पुकार सुनते रहे— लाली, लौट आओ, मैं आ गया।

जब निस्तब्ध रात को हवायें थरथराहट पैदा करती हुई यह पुकार अचानक गाँव के कोने कोने में गूँज जाती तो मातायें व्याकुल होकर अपने-अपने बच्चों को खींचकर छाती से चिपका लेतीं और मर्द दरवाजों पर से उठकर घर के भीतर चले जाते।

एक दिन सदा के लिए इस भयानक पुकार से भी गाँव वालों को छुटकारा मिला। भीत ग्रामीण जनता ने आराम की साँस ली और············।

समाप्त